गुरु-प्रसाद

जून 2014
मूल्य ₹ 10

मासिक पत्रिका, गीता आश्रम, दिल्ली कैन्ट

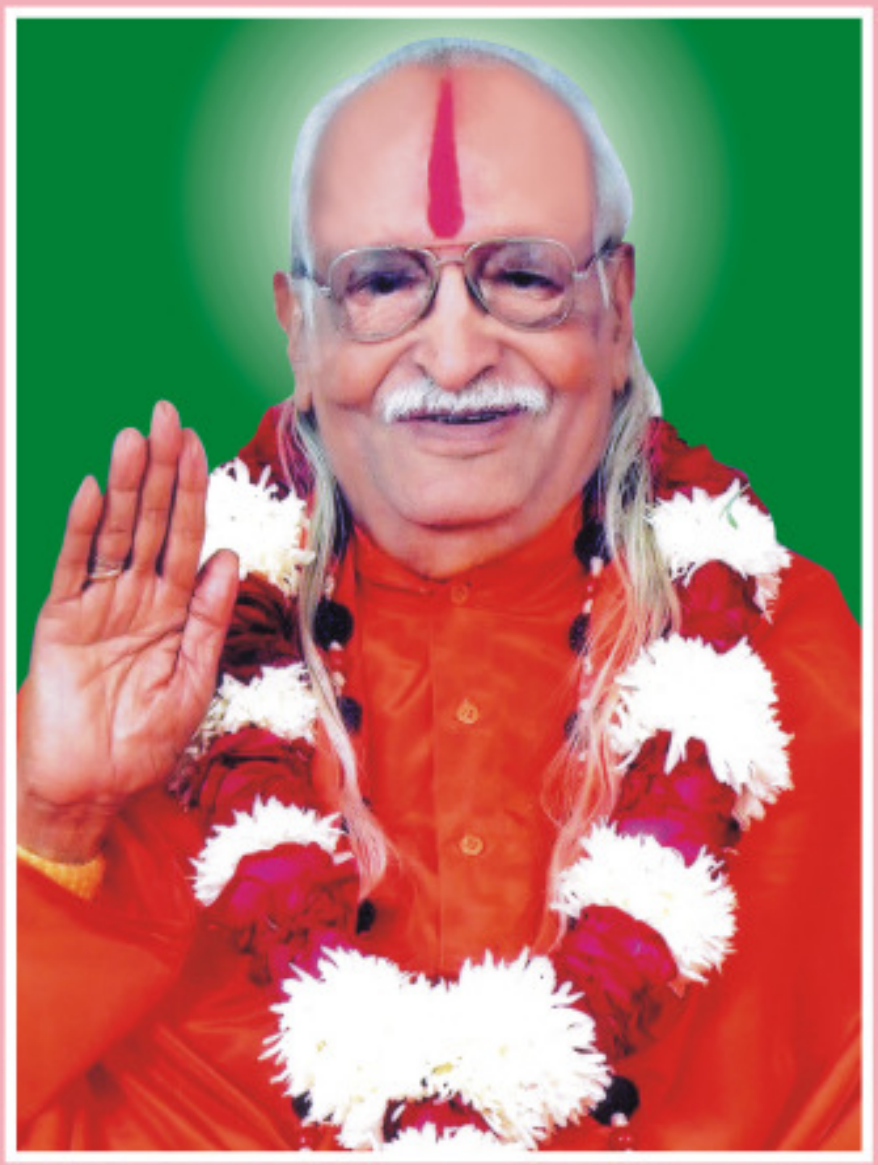

परम पूज्य श्री १००८ स्वामी हरिहर जी महाराज

वर्ष 54 | गुरु प्रसाद - जून 2014 | अंक 06

विनम्रता

हमारे धर्म-ग्रंथों का एक मूल मंत्र है- जो नम्र होकर झुकते हैं वही ऊपर उठते हैं। विनम्रता न केवल आपके व्यक्तित्व में निखार लाती है, बल्कि कई बार सफलता का कारण भी बनती है। विनम्रता के एवज में जो सम्मान मिलता है उसका एक अलग महत्व है। मन की कोमलता और व्यवहार में विनम्रता एक बड़ी शक्ति है। कोमलता सदा जीवित रहती है, जबकि कठोरता का जल्दी ही विनाश हो जाता है। तलवार कठोर से कठोर पदार्थ को काट देती है, लेकिन कई कठोर पदार्थों को काटने की ताकत उसमें नहीं होती। धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से उनकी मृत्यु शैया पर पड़े रहने के दौरान कुछ ज्ञानोपयोगी धर्मोपदेश देने का निवेदन किया था।

भीष्म पितामह ने कहा था कि नदी समुद्र तक पहुंचती है तो अपने साथ पानी के अतिरिक्त बड़े-बड़े लंबे पेड़ साथ ले आती है। एक दिन समुद्र ने नदी से पूछा कि तुम पेड़ों को तो अपने प्रवाह में ले आती हो, परंतु कोमल बेलों और नाजुक पौधों को क्यों नहीं लाती हो? नदी बोली कि जब-जब पानी का बहाव बढ़ता है तब बेलें झुक जाती हैं और झुककर पानी को रास्ता दे देती हैं। इसलिए वे बच जाती हैं। भीष्म ने कहा कि युधिष्ठिर ठीक वैसे ही जो जीवन में विनम्र रहते हैं उनका अस्तित्व, कभी समाप्त नहीं होता। आप सबने अक्सर देखा होगा और इस बात को महसूस भी किया होगा कि कई लोग अपने विशेष कार्य के माहिर होते हैं, लेकिन विनम्रता के अभाव में घर या कार्यालय में सदैव परेशानी का शिकार होते हैं। विनम्रता कायरता नहीं है। यह व्यक्ति को शांति, शक्ति और ऊर्जा प्रदान करती है। मनुष्य यदि विनम्रता से जीवन जीना सीख ले तो अनेक परेशानियां देखते ही देखते समाप्त हो जाती हैं। इनके लिए किसी विशेष उपाय की आवश्यकता नहीं है, बल्कि थोड़ा सा व्यवहार में बदलाव मात्र लाने से यह संभव हो जाता है। विनम्र व्यक्ति के सामने कठोर हृदय वाले व्यक्ति को भी झुकना ही पड़ता है। छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखकर हम अपने जीवन को खुशहाल बना सकते हैं। जो विनम्र होते हैं वे हर जगह सम्मान पाते हैं। परमात्मा को भी किसी की अकड़ पसंद नहीं है। वह अपने बच्चे की भलाई के लिए हमेशा खड़ा है, परंतु आवश्यकता है स्वयं में कुछ मूलभूत सुधार लाने की ताकि जीवन सफल हो सके।

-स्वामी हरिहर जी महाराज

गुरु-प्रसाद

(मासिक पत्रिका)

वर्ष : 54 ◆ अंक : 06 ◆ जून 2014

संस्थापक :

श्री 1008 स्वामी हरिहर जी महाराज

●

संरक्षक :

स्वामी ब्रह्मानन्द जी

सर्वोच्च आध्यात्मिक प्रमुख

गीता आश्रम, दिल्ली कैन्ट, दिल्ली-110010

दूरभाष : 25694380 फैक्स : 25693316

Website : www.geetaashram.net

E-mail Address :

guruji64@hotmail.com

geeta.ashrams@gmail.com

●

एक प्रति : 10.00 रुपये

आजीवन सदस्यता : 1500 रुपये

●

प्रधान सम्पादक :

पण्डित गौरीदत्त शर्मा (गीता रत्न)

●

सम्पादक मण्डल :

गुरु मां गीतेश्वरी (गीता भास्कर)

गीता मातेश्वरी (गीता भास्कर)

श्रीमती स्वर्ण अम्बो (गीता रत्न, पुवानश्री)

श्री गोपी कृष्ण वातल

कृष्णा (रेणु)

एक ही दृष्टि में

विनम्रता	3
दिव्य प्रसाद	5
श्रीहनुमानचालीसा (तात्त्विक विवेचन)	11
सम्पुट वल्ली पाठ	15
सुख और शान्ति की प्राप्ति... गीता के द्वारा	16
कूटस्थोऽक्षर उच्यते	20
गीता और वैराग्य	25
सुख और शान्ति	28
देवी भागवतः श्री जगदम्बिकायै नमः	31
राग द्वेष सुख के बाधक	32
एकादश एवं द्वादश स्कन्ध की विवेचना	34
स्वास्थ्य के लिए सवोत्तम फल : पपीता	36
आश्रम समाचार	37
राशिफल	40
व्रत एवं त्योहार सूची	41

सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक आचार्य गौरीदत्त शर्मा द्वारा मैनेजमेंट कमेटी ऑफ गीता आश्रम, दिल्ली कैंट, नई दिल्ली-10, गीता आश्रम, सदर बाजार, दिल्ली कैंट, नई दिल्ली-10 के निमित्त गीता आश्रम प्रिन्टिंग प्रेस, गीता आश्रम, सदर बाजार, दिल्ली कैंट, नई दिल्ली-110010 से मुद्रित एवं प्रकाशित।

Posted at NEW DELHI PSO, New Delhi-110002 on 2nd/3rd of each month.

ब्रह्मलीन स्वामी श्री 1008 हरिहर जी महाराज का

दिव्य प्रसाद

श्रीमद्भगवद्गीता के सप्तदश अध्याय के षोडश श्लोक का अर्थ-निरूपण तथा व्याख्या

श्लोक

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।

श्रीमद्भगवद्गीता-१७/१६

अन्वयार्थ- मनःप्रसादः = मन की प्रसन्नता, सौम्यत्वं = शान्तभाव, मौनम् = भगवच्चिन्तन करने का स्वभाव, आत्मविनिग्रह = मन का भलीभांति निग्रह, भावसंशुद्धि = अन्तःकरण के भावों की अच्छी प्रकार से शुद्धि, इति = इस प्रकार, एतत् = यह, मानसम् = मन सम्बन्धी, तपः = तप, उच्यते = कहा जाता है।

व्याख्या- 'मनःप्रसादः' मन की प्रसन्नता को 'मनःप्रसादः' कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।
(गी.अ. २/६४)

राग-द्वेष से रहित और अपने वश में की गई इन्द्रियों से विषयों का सेवन करता हुआ आत्मसंयमी साधक मन की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

यह संसार द्वन्द्वात्मक रचा हुआ है। उसमें हमारा कहीं राग और कहीं द्वेष होता है। इससे अन्तःकरण दूषित हो जाता है। राग-द्वेष से रहित मन निर्मल हो जाता है। निर्मल मन वाले साधक में सद्गुणों का वास हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

सिमिट सिमिट जल भरहिं तलावा।
जिमि सद्गुण सज्जन पहिं आवा।।
(मा.दो.-१३/४)

जैसे वर्षा ऋतु में जल एकत्र हो-होकर तालाब में भर जाता है वैसे ही निर्मल हृदय वाले जो सज्जन पुरुष हैं उनके पास एक-एक करके सारे सद्गुण आ जाते हैं। ऐसा सद्गुणी साधक ही परमात्मा की उपासना करके शाश्वत प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है।

संसारी व्यक्तियों, वस्तुओं, परिस्थितियों से जो प्रसन्नता प्राप्त होती है वह आती-जाती है। उसमें स्थिरता नहीं होती। परन्तु परमात्मा के सम्बन्ध से, उनके आश्रय से जो प्रसन्नता होती है, वह आने-जाने वाली न होकर सदा के लिये अपना आत्म स्वरूप ही हो जाती है। वह कभी किसी दशा में नष्ट नहीं होती।

गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस में अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में मंगलाचरण करते हुए ऐसे ही प्रसन्नता का वर्णन करते हुए कहते हैं-

प्रसन्नतां या न गताभिषेकस्तथा
न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बज श्री रघुनन्दनस्य मे

सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा:।।

(मा.अ.श्लो.-२)

रघुकुल को आनन्द देने वाले श्री रामचन्द्र जी के मुखारविन्द की जो शोभा राज्याभिषेक की बात सुनकर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दु:ख से मलिन ही हुई, वह मुख कमल की शोभा मेरे लिये सदा सुंदर मंगलों की देने वाली हो। ऐसी मुख श्री, ऐसी शान्ति ही **'मन:प्रसाद:'** अर्थात् मन की प्रसन्नता कहलाती है।

सौम्यत्वम्– सौम्यभाव को प्राप्त हुए महापुरुष चाहे जैसे देश, काल, परिस्थिति में क्यों न रहे हों अपने भाव से विचलित नहीं हुए। अनेक ऋषि-मुनि, आचार्यगण, महात्मा जन- मीराबाई, तुकाराम, नरसी, ज्ञानेश्वर, कबीर, तुलसी, सूर, बुद्ध, महावीर, मंसूर, ईशुमसीह, गुरु नानक आदि कभी भी अपने सौम्य भाव या शान्त भाव का कभी भी परित्याग नहीं किया।

हिंसा, प्रतिहिंसा, क्रूरता, निर्दयता, कुटिलता, असहिष्णुता, डाह, द्वेष आदि ताप पैदा करने वाले भावों से मन का सदैव शान्त और शीतल बने रहना ही सौम्यत्व का लक्षण है।

गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका के सम्पादक महाभागवत श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी की सन्निधि में राधाभाव में तल्लीन एक महान् संत रहा करते थे। वे राधाबाबा के नाम से जाने जाते थे। उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन की एक घटना भक्तों को बतायी थी जिससे एक अवधूत साधु की सौम्यता का पता चलता है। गृहस्थाश्रम में श्री राधाबाबा का नाम चक्रधर था। उस समय उनकी आयु पन्द्रह वर्ष की थी और बिहार राज्य के प्रसिद्ध गया नगर में नवीं कक्षा के छात्र थे।

उन दिनों अंग्रेजों का राज्य था। कलक्टरी कचेहरी के द्वार पर एक अवधूत साधु रहा करते थे। एक दिन चक्रधर और उनके कुछ मित्र मिलकर उन अवधूत साधु के साथ छेड़खानी करने पहुंचे। किसी ने किसी प्रकार, किसी ने किसी प्रकार उन्हें सताने का प्रयास किया पर वो शान्त ही बने रहे। अन्त में चक्रधर की बारी आयी। वह उनको गुदगुदाने लगा। वे खिलखिलाकर हंसने लगे। वे बहुत हंसे। बस हंसते रहे तथा बार-बार कहते रहे– 'लरिकाई की बान तोरी ना छूटी कन्हैया', 'लरिकाई की बान तोरी ना छूटी कन्हैया'। वे रह-रहकर खिलखिलाते जायें तथा यह वाक्य दुहराते जायें। वे इतने हृष्ट-पुष्ट और बलवान थे कि यदि कहीं उन्होंने चक्रधर का हाथ पकड़ लिया होता तो छुड़ाना सम्भव नहीं था। उन्होंने न तो उसे पकड़ा, न ही डांटा और न गुदगुदाने से मना किया। अन्त में चक्रधर थक गया और गुदगुदाना छोड़ दिया।

संत के दर्शन-स्पर्शन का चक्रधर पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। चक्रधर तो उन्हें सताने के लिये गया था पर उनके थोड़े समय के सम्पर्क का प्रभाव ऐसा था कि घटना के पश्चात् थोड़े ही दिनों में उसके क्रमश: स्वत: परिवर्तन होने लगा। उनके चित्त की चंचलता मिटने लग गयी और व्यवहार में सौम्यता आ गयी।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्री गीता जी के एकादश अध्याय में अपना विराट् रूप दिखाया। उसे देखकर अर्जुन आश्चर्य, व्याकुलता से भर गया। भयभीत होकर, हाथ जोड़े हुए कांपता हुआ अर्जुन उनकी स्तुति करता है और चतुर्भुज विष्णुरूप दिखाने की प्रार्थना करता है। विष्णुरूप को देखकर अर्जुन को पूर्णरूप से शान्ति न मिलने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना मनुष्य रूप दिखाया। उसे देखकर अर्जुन कहता है–

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्त: सचेता: प्रकृतिं गत:।।

(गी.अ. ११/५१)

हे जनार्दन! आपके इस सौम्यरूप को देखकर अब मैं स्थिरचित्त हो गया हूं और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो गया हूं।

भगवान् के लीलाधारी दिव्य मनुष्य रूप के विषय में कहा गया है–

त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यत्गोद्विजद्रु मृगाः पुलकान्यविभ्रन्
(श्रीमद्भा. १०/२८/४०)

गोपियां कहती हैं कि हे नाथ! आपके त्रैलोक्यसुन्दर इस रूप को देखकर गायें, पशु, वृक्ष, लताएं आदि भी पुलकित हो जाती हैं। उसी सुन्दर, सौम्य रूप को देखकर अर्जुन अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं।

भगवंत और उनके संतों की स्वाभाविक सौम्यता से हिंसक प्राणी– सिंह, सर्प, हत्यारे भी सौम्य भाव को प्राप्त होते देखे गये हैं। अतः आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले साधकों के लिये **'सम्यत्वम्'** एक महान गुण होता है।

मौनम्– मौन एक तपस्या है, इससे भी अन्तःकरण की शुद्धि में सहायता मिलती है। एक होता है वाणी का मौन। प्राण-अपान के मेल से अक्षर, शब्द, वाक्य बोले जाते हैं। जब आप बोलने लगते हैं तब देखेंगे कि उस समय प्राण-अपान की गति बंद हो जाती है। श्वास जो बाहर जाता है उसे प्राण कहते हैं और श्वास जो भीतर जाता है उसे अपान कहते हैं।

जब आप मुख से बोलते हैं, श्वासों का बाहर-भीतर जाना-आना बंद हो जाता है। आप बोलना और श्वास छोड़ना या लेना दोनों एक साथ नहीं कर सकते हैं। प्राण-अपान के मेल से ही आप उच्चारण कर सकते हैं। बोलने से प्राणों की शक्ति का व्यय होता है। वाणी का मौन होने से शक्ति का संचय करके साधक परमात्म-प्राप्ति में लगाता है।

भगवत् सम्बन्धी नाम, जप, संकीर्तन, गुणगान, प्रवचन आदि में शक्ति का सदुपयोग होता है वह सत्वगुणी कहा जा सकता है। सांसारिक व्यावहारिक बातों में शक्ति का उपयोग रजोगुणी कहा जा सकता है और क्रोधावेश में, किसी की हानि या अपमान के लिये, दुर्बचन के लिये जोर-जोर से बोलना शक्ति का तमोगुणी उपयोग कहा जा सकता है।

अधिकांशतः वाणी का मौन करने वाले स्लेट या कागज या हथेली आदि पर अंगुली से लिखते हुए गर्दन को हिलाकर हां-ना करते हुए बात करने का प्रयास करते हैं। यहां वाणी का तो मौन रहता है पर मन का मौन नहीं होता है। वह अपना काम करता रहता है। अतएव जब साधक वाणी और मन दोनों से मौन हो जाता है तो उत्तम कोटि का मौन हो जाता है। उस समय साधक परमात्मा में पूर्णरूप से निमग्न हो जाता है। अतएव कहा गया है–

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुवा तो चहुं दिसि फिरे यह तो सुमिरन नाहिं।।

मन परमात्मा में अचल हो जाये, इसे काष्ठमौन कहते हैं। श्री ऋषभदेव जी राज्य त्यागकर अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री भरत जी (जड़ भरत) को राज्य देकर अनेक प्रकार की कठिन तपश्चर्या करते हुए अवधूत गति को प्राप्त हुए। वे गूंगे, बहरे, उन्मत्त की भांति दिगम्बर वेष में प्रारब्धवश दक्षिण भारत में कर्नाटक की ओर चले गये। वे अपने आत्मस्वरूप में स्थित होकर देहभान को भूल गये थे। वहां जंगल की दावाग्नि में उनका शरीर भस्मीभूत हो गया।

इसी प्रकार काष्ठमौन को श्री राधाबाबा जी ने धारण किया था। इसमें न किसी की ओर दृष्टि उठाकर देखना है, न बोलना है, न पढ़ना है, न संकेत करना या लिखना है। अपने इष्ट में लीन हुए शरीर से रहते हुए भी शरीर से परे हो जाना है।

यहां सात्त्विक तप के विषय में मौन शब्द आया है। अत: साधक का मन सांसारिक प्रपंच का चिन्तन न करके भगवान् के चिन्तन में भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम में, भगवत् संबंधी शास्त्रों, पुराणों, गीता, रामायण, भागवत आदि सद्ग्रन्थों में लगे यही उत्तम मौन होगा। जिस किसी प्रकार परमात्मा की प्रीति सुदृढ़ हो, यहां यही मौन का भाव है।

आत्मविनिग्रह– एक होता है निग्रह और एक होता है विनिग्रह। सामान्य रूप से मन का किसी एक में बार-बार लगाने का नाम निग्रह कहलाता है। जैसे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।
(गी.अ. ६/२६)

यह स्थिर न रहने वाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त संसार में विचरता है, उस-उस विषय से रोककर यानी हटाकर उसे बार-बार परमात्मा में ही निरूद्ध करें।

विनिग्रह– विशेष रूप से निग्रह किया हुआ। किसी एक लक्ष्य में निग्रह करते-करते जब उसमें अविचल रूप से मन स्थित हो जायेगा तब उसे मन का विनिग्रह कहेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को निमित्त बनाकर समस्त साधकों को सावधान करते हैं–

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चित:।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मन:।।
(गी.अ. २/६०)

हे अर्जुन! आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियां यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती हैं। इस विषय को समझने के लिये एक पौराणिक घटना का उल्लेख करना अनुचित न होगा। जब श्री वेदव्यास जी श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना कर रहे थे। वे श्लोकों की रचना करके उन्हें अपने शिष्य ऋषि जैमिनि को जांचने के लिये देते जाते थे। तब श्री जैमिनि जी ने नवम् अध्याय का यह श्लोक देखा–

बलवानिन्द्रियागामो विद्वांसमपि कर्षति।
(महाभा. ८/१०/१७)

इस श्लोक को पढ़कर जैमिनि जी ने सोचा कि श्री वेदव्यास जी से इसमें कुछ भूल हो गयी है। क्या इन्द्रियां विद्वानों को कभी विचलित कर सकती हैं? उन्होंने श्री व्यास जी से कहा– इस श्लोक में **'विद्वांसमपि कर्षति'** के स्थान पर **'विद्वांसं नापकर्षति'** अर्थात् विद्वान को भी इन्द्रियां अपनी ओर आकर्षित कर सकती हैं, इस स्थान पर होना चाहिए विद्वान को इन्द्रियां अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती हैं। श्री व्यास जी ने कहा– मैंने जो लिखा है, वही ठीक है। इसमें कोई भूल नहीं है।

एक दिन जैमिनि जी अपने आश्रम में बैठकर सायंकाल की संध्योपासना करके जल आदि का विसर्जन करने जा रहे थे। तब वहां उन्होंने देखा कि एक सुन्दरी युवती नारी एक वृक्ष के नीचे वर्षा से भीग रही है। भीगे, झलकते हुए सौंदर्य को देखकर जैमिनि जी विचलित हो गये।

जैमिनि जी ने उस सुन्दरी से कहा– यह कुटिया तुम्हारी ही तो है। युवती ने कहा– पुरुष कपटी होते हैं, मैं आपका विश्वास कैसे करूं? जैमिनि जी कहने लगे– मैं तो पूर्व मीमांसा का आचार्य जैमिनि ऋषि हूं। क्या मेरा भी विश्वास नहीं करोगी। मुझ जैसे तपस्वी का भरोसा नहीं करोगी तो फिर किसका भरोसा करोगी? यह अपनी ही कुटिया समझो, आओ और यहां विश्राम करो। वह सुन्दरी आश्रम में आ गयी। जैमिनि जी ने बदलने के लिए सूखे कपड़े दिये। उन्होंने फिर रूप देखा तो मन और ललचा गया। उन्होंने उससे पूछा– तुम्हारा विवाह तो नहीं हुआ होगा? वह नारी अविवाहिता थी। अत: जैमिनि जी ने

विवाह का प्रस्ताव रखा।

युवती ने कहा– मेरे पिताजी ने प्रतिज्ञा की है कि जो पुरुष घोड़ा बनकर मेरी पुत्री को अम्बा जी के मन्दिर में दर्शन कराने ले जायेगा, उसी के साथ उसका विवाह करूंगा। जैमिनि जी ने सोचा चाहे घोड़ा बनना पड़े, किन्तु यह युवती तो मेरी ही हो जायेगी। वे सब कुछ करने को तैयार हो गये।

जैमिनि जी ने घोड़ा बनकर युवती को अपनी पीठ पर सवार करा लिया और मन्दिर पहुंचे। उस मंदिर में व्यास जी बैठे हुए थे। उन्होंने सारी बात जानकर जैमिनि जी से पूछा– उस श्लोक में क्या होना चाहिए **'कर्षति या अपकर्षति'**?

जैमिनि जी ने कहा– हे महाराज! आप ही सच्चे हैं। क्षणमात्र की असावधानी होने से इन्द्रियां मन को अपनी ओर आकर्षित कर पतन की ओर ले जाती हैं। जैमिनि जी ने श्री वेदव्यास जी को साष्टांग प्रणाम किया। वह सब श्री वेदव्यास जी की ही माया थी, तत्काल अदृश्य हो गयी। अतएव श्री भगवान् जी का आश्रय लेकर इन्द्रियों को अच्छी प्रकार, अपने वशीभूत करना चाहिए। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी कहते हैं–

परबस जानि हंस्यो इन इन्द्रिन निज बस हवै न हंसैहों।

मन मधुकर पन के तुलसी रघुपति पदकमल बसैहों।।

इन इन्द्रियों ने अपने वशीभूत जानकर मेरी हंसी उड़ायी है। अब मैं अपने मन को भौंरा बनाकर श्री रामचन्द्र जी के दिव्य सौंदर्य, सुगन्ध से भरे हुए चरण कमलों में बसा दूंगा। अब यह सच्चिदानन्द रस का पान करके तृप्त हो जायेगा और इन्द्रियों के विषमय विषय रस से मुक्त हो जायेगा। एक संत कहते हैं–

चाख चाख सब छाड़िया मायारस खारा हो।
नाम सुधारस पीजिये छिन बारम्बारा हो।।

साधक मन के वशीभूत होकर काम न करे, वह अपने मन को ही अच्छी प्रकार वश में करके जब जहां जिस कर्म में लगाना चाहे उसे लगा सके तभी **'आत्मविनिग्रह'** कहा जायेगा।

भावसंशुद्धि– अन्त:करण में जो नाना प्रकार के मायिक विकार अनेक जन्म-जन्मांतर से भरे हुए हैं, उनके नाश हुए बिना **'भावसंशुद्धि'** नहीं हो सकती। इसके लिये गुरु शरणागत होकर साधक जब सच्चिदानन्द भगवान् को प्राप्त करने के लिये दृढ़व्रती होकर साधना करता है और उन्हीं की कृपा का भरोसा रखता है तब जो दुर्भाव हैं, वे नष्ट हो जाते हैं और **'भावसंशुद्धि'** हो जाती है।

हमारे जीवन का परम शत्रु अज्ञान है जो अपनी सेना सहित अन्त:करण में अधिकार किये बैठा है। अपनी सेना के सेनापति अहंकार के अधीन काम, क्रोध, लोभ उपसेनापति रखे हुए हैं। फिर इनके अधीन और सहयोगी रूप में अनेक बलिष्ठ और दुर्जय रूप सैनिक हैं जो अवसर पाते ही भगवद्मार्ग पर चलने वालों के लिये कंटक बन जाते हैं। अज्ञान का पुत्र मोह महा बलशाली है जो अज्ञान के शासन में रहने वाले जीवों को अपने वशीभूत किये रहता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा–

कच्चिदज्ञानसम्मोह: प्रनष्टस्ते धनञ्जय।
(गी.अ. १८/७२)

हे धनंजय! क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हो गया? तब अर्जुन उत्तर देता है–

नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा त्वप्रसादान्मयाच्युत।
(गी.अ. १८/७३)

हे अच्युत्! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।

इस प्रकार जीव को नाना प्रकार के दुर्भाव घेर लेते हैं और यह जीव उन्हीं को गले लगाकर फूला नहीं समाता, अंधकार की ओर बढ़ता

रहता है। कभी संत कृपा से भगवद् मार्ग पर चलने लगता है, सद्भावों का प्रकाश होता है और यह जीव अपने परमधाम की ओर अग्रसर हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

त्रिर्भिगुणमयैर्भावैरेभि: सर्वमिदं तवम्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्य: परमव्ययम्।।

गुणों के कार्यरूप सात्त्विक, राजस, तामस– इन तीनों प्रकार के भावों से यह सारा संसार मोहित हो रहा है, इसीलिये इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को यह नहीं जानता है।

तीनों सात्त्विक, राजस, तामस गुण परिशुद्ध हो जाते हैं जब ये भगवान् में समर्पित हो जाते हैं। तब भगवान् में अनन्य भाव हो जाता है और जितने समस्त सात्त्विक, राजस, तामस भाव हैं वे अनन्य भाव में लीन होकर भगवन्मय हो जाते हैं।

यही **'भावसंशुद्धि'** की पराकाष्ठा है। भगवान् तो **'पावनानां पावनम्'- (भागवत माहात्म्य अ. १)** और पवित्र करने वालों में भी पवित्र हैं।

'भावसंशुद्धि:' सर्वश्रेष्ठ तप है। मन की प्रसन्नता, सौम्य भाव, मौन, आत्म-विनिग्रह की सार्थकता तभी है जब **'भावसंशुद्धि'** होगी। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं–

यावत् सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपपद्यते।
तावदेवमुपासीत वाङ्मन:कायवृत्तिभि:।।
(श्रीमद्भा. ११/२९/१७)

जब तक सम्पूर्ण प्राणियों में मेरा भाव अर्थात् सब कुछ परमात्मा ही है, ऐसा वास्तविक भाव न होने लगे तब तक इस प्रकार मन, वाणी, शरीर से सभी संकल्पों और कर्मों द्वारा मेरी उपासना करता रहे।

यदि भक्त का किसी भूत-प्रेत में भी भगवद्भाव हो जाये तो उस प्रेत का उद्धार हो जाता है और भक्त को भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। जैसे भक्त नामदेव जी को एक बार लम्बे आकृति का एक भयंकर प्रेत दिखायी दिया तो वे उसे भगवत स्वरूप समझकर प्रसन्नतापूर्वक कह उठे–

भले पधारे लम्बकनाथ।
धरनी पांव स्वर्ग लौं माथा जोजन भर के लंबे हाथ।।
सिब सनकादिक पार न पावें अनगिन साज सजाये साथ।
नामदेव तुम ही स्वामी कीजै मौकौं आप सनाथ।।

इससे उस प्रेत का उद्धार हो गया और उसके स्थान पर भगवान् प्रकट हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगा:।
योन्ये मूढधियो नागा: सिद्धा मामीपुरञ्जसा।।

हे उद्धव! गोपियां, गायें, वृक्ष, पशु, नाग तथा इस प्रकार के और भी मूढ़ बुद्धि प्राणियों ने अनन्य भाव के द्वारा सिद्ध होकर अनायास ही मेरी प्राप्ति कर ली है।

अतएव कहा गया– **'भावग्राहीजनार्दन:'** अर्थात् भगवान् भाव से ही मिलते हैं। मन्दिरों में अष्ट धातु, पाषाण, काष्ठ आदि की मूर्तियां प्रतिष्ठित की जाती हैं। भक्त की भावना जब सिद्ध हो जाती है तब वे मूर्तियां अचल से सचल हो जाती हैं और भक्त की भावना के अनुसार साक्षात् प्रकट होकर नर लीला भी करती हैं। ऐसे अपने देश में अनेक संत हो चुके हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस, ग्वारिया बाबा (वृंदावन), नामदेव (महाराष्ट्र) के ऐसे ही संत थे।

इत्येतत्तपो माननमुच्यते– ये सभी उपर्युक्त गुण मन से सम्बन्ध रखने वाले और मन को सभी दोषों से रहित करके परम पवित्र बना देने वाले हैं, इसलिये इनको मानस-तप कहा गया है।

श्रीहनुमानचालीसा

(तात्त्विक विवेचन)

● स्वामी ब्रह्मानन्द

जय जय जय हनुमान गोसाईं।
कृपा करहु गुरुदेव की नाईं।।

भावार्थ– गोस्वामी श्री तुलसीदास जी अपने इष्टदेव श्रीराम जी के सेवा हेतु त्रिलोकी नाथ जगद्गुरु भगवान श्री शंकर जी के अवतार जितेन्द्रिय, अमानी श्री हनुमान जी की गुरुभाव से अपने आत्म कल्याणार्थ उनकी जय जय जय कहते हुए प्रार्थना करते हैं।

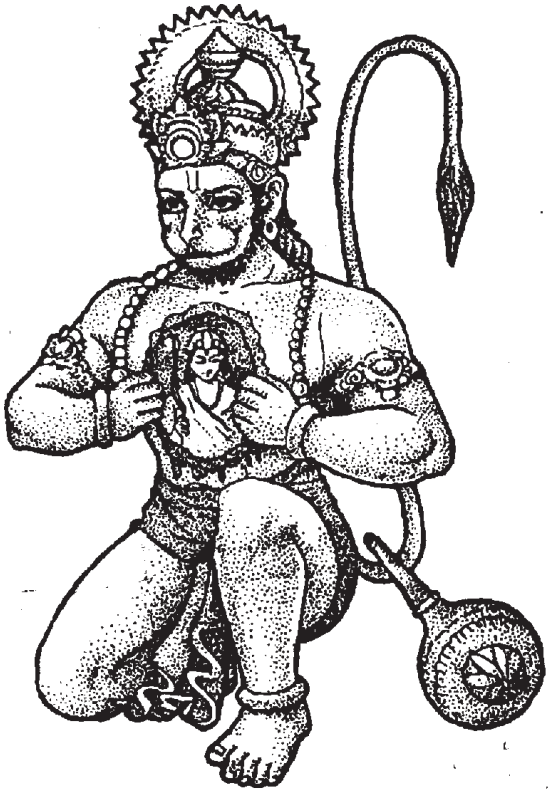

जय जय जय– भगवत्कृपा प्राप्त करने के लिये, भगवद्कथा के विशिष्ट प्रसंगों में आनन्दोल्लास में 'जय जय जय' कहने का सदा से ही साधु समाज में प्रचलन रहा है।

ऋषि-मुनियों ने संसार के कल्याणार्थ त्रिविध तापों की शान्ति के लिये अपने सद्ग्रंथों में **'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः'** का हर अध्याय या ग्रन्थ के अन्त में मंगलकामना के साथ प्रयोग किया है।

देव मंदिरों में सामान्यतया तीन बार परिक्रमा करने का अभी भी विधान है। किसी तीर्थ में कम से कम तीन दिन वास करना भी उत्तम माना गया है।

तीन नदियों के संगम को अतिश्रेष्ठ माना गया है। जैसे तीर्थराज प्रयाग में गंगा, जुमना, सरस्वती के संगम में स्नान करना बहुत ही उत्तम माना गया है।

भगवान् या उनके परमधाम को प्राप्त करने के लिये तीन ही साधन कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग ही सद्ग्रन्थों में बताये गये हैं।

इस प्रकार जीवन के व्यवहार या परमार्थ में अनेक प्रकार से तीन बार का प्रयोग किया जाता है। उसका कारण है इस सृष्टि का निर्माण भी तीन से हुआ है।

परमात्मा का आदि नाम ॐ **'प्रणवः सर्ववेदेषु'** गी.अ. ७/८ के रूप में कहा गया है। उसमें अ, उ, म् की तीन ध्वनि मिलकर एक ध्वनि बनती है। परमात्मा तत्त्वतः तो एक ही है पर लीला पिपासु के लिये वे अपने को तीन रूपों में प्रकट करते हैं– निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, सगुण-साकार। परमात्मा से अपरा प्रकृति प्रकट

हुई जिसके तीन गुण हैं– सत्त्व, रज, तम। इन्हीं से सृष्टि का नाम-रूप खड़ा होता है। अतएव भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभि: सर्वमिदं जगत्।

गी.अ. ७/१३

इन तीनों गुणों के कार्यरूप सात्त्विक, राजस, तामस भावों से यह संसार भरा हुआ है।

परमात्मा ने अनन्त जीवों की जड़-चेतन रूप में रचना की। वो भी तीन प्रकार के हैं–

जलचर थलचर नभचर नाना।
जे जड़-चेतन जीव जहाना।।

(मानस)

जल में रहने वाले, भूमि में रहने वाले, आकाश में रहने वाले– ये तीन प्रकार के जीव हैं।

इन समस्त जीवों की चौरासी लाख योनियां हैं। उन समस्त योनियों में मनुष्य योनि ही सर्वश्रेष्ठ कही जाती है जिसमें जीवों के तीन भेद होते है–

त्रिविध जीव जग वेद बखाने।
विषयी साधक सिद्ध सयाने।।

कुछ मनुष्य होते हैं जो विषय-भोगों में ही लीन रहते हैं, परिणाम में जिन्हें नरकवास और आसुरी योनियों की प्राप्ति होती है। कुछ मनुष्य भगवत्प्राप्ति के लिये साधना करते हैं, उन्हें स्वर्ग आदि पुण्य लोकों की प्राप्ति होती है। उनका जन्म पवित्र और धनी-मानी घरों में या योगी कुलों में होता है। जो सिद्ध हो जाते हैं वे सच्चिदानन्द परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं।

समस्त सृष्टि की व्यवस्था के लिये प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तीन ही प्रधान देव होते हैं।

अतएव शास्त्रीय परंपरा के अनुसार गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने श्री हनुमान जी की तीन बार जय, जय, जय कहकर प्रार्थना की।

हनुमान– हनुमान का एक भाव होता है जो मान का हनन करे। श्री हनुमान जी के जीवन में आदि से लेकर अन्त तक देखेंगे कि उनमें सदा यही भाव रहा–

सबहि मानप्रद आप अमानी

(मानस)

हनुमान जी सीता की खोज कर जब प्रभु श्रीराम जी के पास आये और जाम्बवान जी ने श्री हनुमान जी के अद्भुत कर्मों का वर्णन किया तब श्रीराम जी कहते हैं–

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुन नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकल मन मोरा।।

(मानस)

हे हनुमान! तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरे उपकार के बदले में क्या उपकार करूं, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता।

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउं करि विचार मन माहीं।।
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता।।

(मानस)

हे पुत्र! सुन, मैंने मन में विचार करके देखा है कि मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता। देवों के रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान जी को देख रहे हैं। नेत्रों में प्रेम के आंसुओं का जल भरा हुआ है और शरीर अत्यंत पुलकित है।

अब श्री हनुमान जी की निरभिमानिता, अमानीपन का भाव देखते ही बनता है–

दोहा-

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत।।

(मानस)

प्रभु के वचन सुनकर और उनका प्रसन्न मुख तथा पुलकित अंगों को देखकर हनुमान जी हर्षित हो गये और प्रेम में विकल होकर 'हे भगवन! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्रीराम जी के चरणों में गिर पड़े।

ऐसे मान से परे शंकरावतार हनुमान का स्मरण कहकर तुलसीदास जी उनकी प्रार्थना कर रहे हैं, ताकि प्रभु श्री रामधाम को वो प्राप्त कर सकें। क्योंकि श्री हनुमान जी के लिये कहा गया है–

राम दुआरे तुम रखवारे।
होत न आज्ञा बिनु पैसारे।।

(मानस)

गोसाईं– यहां गोस्वामी तुलसीदास जी श्री हनुमान जी को 'गुसाईं' कहते हैं इसलिये कि उनकी आराधना से ही वे अपनी इन्द्रियों को अपने वशीभूत करके प्रभु श्रीराम के अनन्य भक्त बने थे। भारतवर्ष में उनके द्वारा उनके जन्मस्थान और काशी में स्थापित हनुमान मंदिर हैं। उन्हीं की उपासना से ही वो श्रीराम जी की भक्ति को प्राप्त किया है।

गोसाईं का अर्थ होता है– गो = इन्द्रिय, साईं = स्वामी अर्थात् जो कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, मन सहित- इन ग्यारह इन्द्रियों का स्वामी है, वही जितेन्द्रिय गोसाईं कहा जाता है। श्री हनुमान जी की प्रार्थना करते हुए उनके उपासक तुलसीदास जी भाव विभोर होकर 'गोसाईं' कहते हुए हर्षित होते हैं। क्योंकि बिना इन्द्रियों को अपने वश में किये हुए कोई भी पुरुष न तो सांसारिक सिद्धि और न तो पारमार्थिक सिद्धि ही प्राप्त कर सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को सावधान करते हुए दृढ़ता के साथ उसके कल्याण के लिये कहते हैं–

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

(गी.अ. ३/४१)

हे अर्जुन! पहले इन्द्रियों को वश में करके इस ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले महान पापी काम को अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल।

श्री हनुमान जी माता सीता की खोज करते हुए रावण के रंग महल में पड़े हुए रावण को देखते हैं और उसके साथ पलंग पर लेटी हुई मन्दोदरी को देखते हैं तथा रात्रि भर अपने नृत्य-गान से रावण को प्रसन्न करती हुई, सुरापान किये हुए, भ्रमित होकर अस्त-व्यस्त वस्त्रों में लिपटी हुई अनेक मुद्राओं में उन सुन्दरियों को देखते हैं, जहां माता सीता को पाने की संभावना थी। उनके मन में शंका होती है कि कहीं इन नव यौवना सुन्दरियों को देखकर मेरा मन अपने प्रभु मार्ग से विचलित तो नहीं हुआ।

वो अपने आप अपना आत्मनिरीक्षण करते हुए विश्वस्त होते हैं कि मुझे भगवती सीता की खोज के लिये ही इस रावण के रंगमहल में भी आना पड़ा और उस विलास भवन में राक्षसाधिपति और अनेक यौवन मदमाती सुन्दरियों को देखना पड़ा पर मेरा मन तो हर सुन्दरी में सीता माता का दर्शन करके उन्हें खोज रहा था। मेरा मन तो परम पवित्र है। ऐसे जितेन्द्रिय श्री हनुमान जी को तुलसीदास जी 'गोसाईं' कहकर भगवान् श्रीराम को पाने के लिये उनकी कृपा प्राप्त करना चाहते हैं।

कृपा करहुं गुरुदेव की नाईं–

आत्मकृपा, गुरुकृपा, शास्त्रकृपा, भगवत्कृपा– ये चार कृपाएं मुख्य हैं, जिनसे भगवान् की प्राप्ति होती है। सर्वप्रथम तो आत्मकृपा है। भगवान् को प्राप्त करने के लिये प्रबल जिज्ञासा, तीव्र इच्छा होना ही आत्मकृपा है। जब

भगवत्प्राप्ति की महान् उत्कंठा, लालसा जगेगी तो भगवान् कहां मिलेंगे, कैसे मिलेंगे, कौन बतायेगा, इसकी खोज करनी पड़ेगी– तभी पूर्व जन्मों के पुण्य प्रताप से हमें सद्गुरु मिलेंगे। और सद्गुरु शास्त्रों का ज्ञान करायेंगे अथवा अपने श्रीमुख से उपदेश करके शास्त्रों का सार बता देंगे, यह दूसरी कृपा होगी। गुरु कृपा से शास्त्रों द्वारा साधना का ज्ञान होगा। शास्त्रविधि से अपनी उपयुक्त साधना को करना होगा यह तीसरी कृपा होगी। साधना करने पर अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, उसमें सूक्ष्म रूप से कुछ दोष भी छिपे रहते हैं जिन्हें पार कर जाना आसान नहीं होता। उस समय भगवान् को पुकारना पड़ता है। भगवान् कृपा करते हैं और भगवत्कृपा से यह जीव अज्ञान की अंधेरी घाटियों को पार कर भगवान् को प्राप्त कर लेता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

(गी.अ. १०/९)

जो निरन्तर मुझमें मन लगाने वाले और मुझमें ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जानते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही निरन्तर रमण करते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

(गी.अ. १०/१०)

उन निरन्तर मेरे में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूं, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।

(गी.अ. १०/११)

और हे अर्जुन! भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये उनके अन्तःकरण में स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान रूपी दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूं।

इसे कहते हैं भगवत्कृपा। जब साधक साधना करते-करते अपनी शक्ति लगा लेता है और मायाजनित दोषों को नष्ट नहीं कर पाता तब वह भगवान् की शरणागत होता है और उनकी कृपा से ही वह दोषों को दूर कर विशुद्ध अन्तःकरण से अनन्यभक्ति द्वारा अपने प्रियतम परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

जगज्जननी सीता जी की खोज में विलम्ब के लिये सुग्रीव जी भगवान् श्रीराम जी के पास आकर चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहते हैं–

विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी।
मैं पावंर पसु कपि अति कामी।।
नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।

हे स्वामी! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयों के वश में हैं। फिर मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अत्यंत कामी बंदर हूं। स्त्री का नयन-बाण जिसको नहीं लगा, जो भयंकर क्रोध रूपी अंधेरी रात में भी जागता रहता है अर्थात् क्रोध के वशीभूत होकर अपना विवेक नहीं खो बैठता।

लोभ पांस जेहिं गर न बंधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया।।
यह गुन साधन तें नहिं होई।
तुम्हरी कृपां पाव कोई कोई।।

और लोभ की फांसी से जिसने अपना गला

नहीं बंधाया, हे रघुनाथ जी! वह मनुष्य आप ही के समान है। यह गुण साधन से नहीं प्राप्त होते। आपकी कृपा से ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं।

अतएव अन्तिम चौथी भगवत् कृपा ही सब कृपाओं का फल है और इसे प्राप्त कर साधक सब कुछ पा लेता है। अपने सर्वेश्वर प्रभु को पाकर वह कृतकृत्य हो जाता है।

कृपा और दया में कुछ अन्तर होता है। वैसे बाह्य दृष्टि से दोनों एक जैसे लगते हैं पर आन्तरिक रूप से सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर कुछ अन्तर प्रतीत होता है।

किसी लूले-लंगड़े को, किसी अंधे को, किसी दीन-हीन भिखारी को देखकर हृदय द्रवित हुआ, हमने उनकी यथायोग्य कुछ सहायता कर दी, दान दे दिया– यह दया कही जायेगी। और यह सत्त्वगुण है। भगवत्मार्ग पर चलने के लिये, बढ़ने के लिये सहायता करता है। दया तो बड़ा, छोटा, बराबर का कोई भी कर सकता है और किसी की भी कुछ सहायता कर सकता है। दया में करने का कुछ भाव रहता है।

माता-पिता संतान पर, गुरु शिष्य पर, भगवान भक्त पर जो करते हैं वह कृपा होती है। छोटे के समर्पण होने पर बड़े का हृदय जो द्रवित होता है उसे कृपा कहते हैं। अर्जुन को कर्तव्य मार्ग पर भटकते हुए देखा तो भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने सखा, बन्धु, भक्त अर्जुन के ऊपर कृपा की वर्षा कर दी। गीता जैसा महान् ज्ञान देकर अर्जुन को और उसके निमित्त से जगत् के जीवों के कल्याण के लिये उपदेश किया। यह भगवान् की महती कृपा थी।

इसी प्रकार तुलसीदास जी श्री हनुमान जी के उपासक थे। उन पर परम श्रद्धा, विश्वास रखते थे। उनकी महिमा को जानकर ही उन्होंने याचना की कि हे हनुमान जी मेरे ऊपर गुरु की भांति कृपा करो। जैसे गुरु की कृपा से शिष्य भगवान् को प्राप्त करता है, वैसे ही मैं भी आपकी शरणागत हूं। आप मेरे ऊपर कृपा करो और मुझे श्रीराम की प्राप्ति कराओ।

●

सम्पुट वल्ली पाठ

देश-विदेश के समस्त गीता आश्रमों में सम्पुट वल्ली पाठान्तर्गत दिनांक ३१.५.२०१४ को श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय का अड़तीसवां मंत्र (१८/३८) एवं दिनांक १.६.२०१४ को अठारहवें अध्याय का उनतालीसवां मंत्र (१८/३९) सम्पुट वल्ली मंत्र होगा।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता-१८/३८

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता-१८/३९

सुख और शांति की प्राप्ति... गीता के द्वारा

(श्री सद्गुरुदेव भगवान के दिव्य प्रवचनों पर आधारित)

● गुरु मां गीतेश्वरी (गीता भास्कर)

गतांक से आगे...

सुख और शांति की प्राप्ति के लिये सत्संग एक सुगम और सरल साधन है। सत्संग की महिमा सभी शास्त्रों और ग्रन्थों ने, सभी संतों एवं महापुरुषों ने गाई है। एक सत्संग करने से कई-कई यज्ञों का फल मिलता है। सत्संग से तप यज्ञ होता है। शरीर से हम संसार के सारे काम छोड़कर सत्संग में बैठते हैं, भजन-कीर्तन में मग्न हो जाते हैं, भगवान् की छवि देख-देख मन बड़ा प्रसन्न और शांत होता है, ध्यान भगवद् चर्चा में लगा रहता है। वाणी से भगवान् का गुणगान करते बड़ा सुख मिलता है। वाणी से सत् शास्त्रों का पाठ होता है, वाङ्मय तप रूप यज्ञ होता है। भगवान् ने गीता में बताया कि–

मच्चित्ता मद्गत्प्राणा बोधयन्तः परस्परं।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

ऐसे भक्त जिनका चित्त हमेशा मुझमें लगा हुआ है, हर प्राण से वे मेरा चिंतन करते हैं और आपस में हमेशा मेरी ही चर्चा करते रहते हैं, मेरी कथा-कीर्तन करते रहते हैं, इसी में ही सन्तुष्ट रहते हैं और मुझमें ही निवास करते हैं।

मानसिक तप सत्संग का अंग है, मन शुद्ध रहता है, सद्भावना से भरपूर रहता है, मौन जो मानसिक तप का मुख्य लक्षण है वो सत्संग में अनायास हो जाता है।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः।
भाव संशुद्धि रित्येत तपो मान समुच्यते।।

मन प्रसन्न रहे, शांत रहे, सौम्य भाव में रहे, मन नियंत्रित रहे, भावों की शुद्धि रहे यह सब कुछ सत्संग में ही संभव है। इस प्रकार से शरीर, वाणी और मानसिक तप रूपी यज्ञ सत्संग में होता है।

स्वाध्याय यज्ञ सत्संग में बड़ी सरलता से होता है, आत्मचिंतन में ही सच्चा स्वाध्याय है जिससे साधक सुख और शांति का अनुभव करता है।

स्वाध्याय से ज्ञान की प्राप्ति भी सत्संग में होती है। सत्संग में भगवद् संबंधित ज्ञान यज्ञ होता है। सेवा सत्संग का मुख्य अंग है। एक दूसरे की सेवा, भगवान् के विग्रहों की सेवा, ठाकुर जी को अलंकृत करना, भोग बनाना। भगवद् भक्तों की सेवा से परस्पर भाव बनता है।

'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परम वाप्स्यथ'

एक दूसरे के प्रति प्रेम भाव जाग्रत होने से ही परम् कल्याण की प्राप्ति होती है। सुख शांति की प्राप्ति का यह सबसे बड़ा साधन है। 'सेवा भाव' से परम् सुख मिलता है, क्योंकि परमात्मा का निवास हर प्राणी में है–

'सर्वस्य चाहं हृषि सन्निविष्टो'

इस नाते प्राणी मात्र की सेवा ही भगवान् की सच्ची सेवा है। निष्काम सेवा ही सच्चा कर्मयोग है। इसलिये एक कर्मयोगी हो या भक्त हो अथवा ज्ञानी, मन का यही भाव रहता है।

'गुरुदेव मेरे दाता मुझको ऐसा वर दो।
सेवा, स्मरण, सत्संग झोली में मेरे भर दो।।'

सत्संग की महिमा इसलिये ही गाई गई है, क्योंकि सत्संग में ये तीनों चीजें सम्भव हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में सत्संग की महिमा बताई है–

'तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिले जो सुख लव सत्संग।।'

अर्थात् तराजू के एक पलड़े में स्वर्ग के सारे सुख हों और दूसरे पलड़े में सत्संग हो तो सत्संग के सुख का पलड़ा स्वर्ग के सुखों से भारी होगा। क्योंकि सत्संग ही ठाकुर जी के अलौकिक दर्शन कराता है, परम् पिता परमेश्वर से मिलाता है।

श्री सद्गुरुदेव से जीवन के सबसे पहले प्रवचन में सत्संग की महिमा सुनी। उसका बहुत गहरा प्रभाव मेरे जीवन पर पड़ा। श्री गुरु महाराज जी ने एक प्रसंग में बताया कि एक बहुत बड़ा डाकू था। उसका काम था चोरियां करना, डकैतियां करना, मार-धाड़ करना। उसका एक ही बेटा था उसको भी यही काम सिखा रखा था, बेटे को यह सिखाया कि बेटे कभी भूलकर भी सत्संग में मत जाना और कभी भूलकर भी संतों-महात्माओं के पास मत जाना, क्योंकि उसको यह डर था कि अगर संतों के पास जायेगा या सत्संग में जाएगा तो उसका मन शुद्ध हो जायेगा और चोरी-डकैती छोड़ देगा और मेरा धंधा ठप्प पड़ जायेगा। बाप तो यह सब कुछ सिखाते-सिखाते मर गया। पीछे बेटा भी यही काम करने लगा। एक दिन चोरी करते पीछे पुलिस लग गई, यह दौड़ता गया, भागता गया कि कहां अपने आपको छुपाऊं। आखिर एक जगह देखा वहां सत्संग हो रहा है। सोचा सत्संग में जाकर बैठ जाता हूं, पुलिस से बच जाऊंगा। परन्तु पिताजी ने तो मना किया है सत्संग में जाने के लिये, पर क्या करूं आज तो जान पर आ पड़ी है। मरता क्या नहीं करता। आखिर अंदर सत्संग में आकर बैठ गया। सबसे आगे जहां महात्मा जी बैठकर प्रवचन कर रहे थे, उनके पास हाथ जोड़कर सिर झुकाये बगुला भगत बनकर बैठ गया। पुलिसवाले अंदर आये, चारों ओर देखा कि यहां तो कोई चोर नजर नहीं आता, सारे तो भक्त लोग बैठे हुए हैं। पुलिस वाले तो चले गये।

महात्मा जी सबको गीता पढ़ा रहे थे और सभी महात्मा जी के पीछे गीता के श्लोक बोल रहे थे– **अद्वेष्टा सर्व भूतानां** आदि-आदि। सारी संगत गीता के मंत्रों का उच्चारण कर रही थी, यह चोर भी बोला परंतु मजबूरी से बोला। मन में कोई श्रद्धा, भक्ति-भाव नहीं था, सोचा कि अगर श्लोक नहीं बोलूंगा तो पकड़ा जाऊंगा। दस मिनटों की गीता पढ़ी। सत्संग समाप्त हुआ, सभी बाहर आये, यह चोर भी बाहर खुली हवा में आया। मन में कहने लगा आज तो जान बची लाखों पाये। उसके बाद कभी जीवन में सत्संग नहीं गया और न कभी गीता या किसी अन्य ग्रन्थ का पाठ किया। आखिर एक दिन ऐसा आया जो सबके जीवन में अवश्य आता है। वो है मौत का दिन। बाकी सब कुछ झूठ हो सकता है परंतु यह अटल सत्य है कि जो संसार में आया है वो जाएगा जरूर और जो गया है वो फिर आएगा जरूर।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद्परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितु मर्हसि।।'

इस चोर की भी मौत हुई। मरने के बाद जीवों को अपने-अपने कर्मों के अनुसार कई

लोकों से गुजरना पड़ता है। अनेक लोक हैं जैसे कि सूर्य लोक, चन्द्र लोक, बृहस्पति लोक, ध्रुव लोक, पितृ लोक, स्वर्ग लोक, ब्रह्मा का लोक, गो लोक, शिव लोक, साकेत लोक आदि आदि। इन लोकों में यहां की दौलत, महल, इमारतें, यहां के प्रमाण पत्र कुछ भी काम नहीं आते, वहां तो स्मरण की कमाई, दिया हुआ दान, सेवा की और अपने किये हुए अच्छे कर्मों की पूंजी काम आती है। यह चोर भी मरकर यमराज के पास गया तो यमराज ने इसके कर्मों का लेखा जोखा देखा तो हैरान हो गया, सारी जिदंगी चोरियों और डकैतियों के अलावा और कुछ नहीं किया था सिर्फ एक बार एक सत्संग में दस मिनटों की गीता पढ़ी थी और वो भी मजबूरी से, मन में कोई भाव नहीं था, कोई श्रद्धा नहीं थी। विचारणीय है कि यह हमारे कर्मों का लेखा-जोखा कौन लिखता है? यह सबके कर्मों का हिसाब चित्रगुप्त रखता है। यह चित्रगुप्त कहां रहता है? चित्र+गुप्त अर्थात् जो गुप्त रूप से चित्र अर्थात् फोटो खींचता रहे वो है चित्रगुप्त। यह चित्रगुप्त हमारे अंदर ही रहता है, हमारा विवेक कहो या अंत:करण या चित्त कहो, यह है चित्रगुप्त। हमने कोई कर्म किया तुरंत चित्रगुप्त उसकी फोटो खींच लेता है। हमने किसी का बुरा सोचा उसने फोटो खींच ली, फिर चाहे हमने वो बुरा कर्म किया नहीं हो, परंतु बुरा सोचने का भी फल मिलता है वो ऐसे मिलता है कि नींद में बुरा सपना आता है और आदमी डर के चीखता है और उस बुरा सोचने का फल समाप्त हो जाता है। उसी तरह किसी के लिये अच्छा सोचा, परंतु वो किसी कारणवश किया नहीं, पर उस अच्छा सोचने का फल मिलता है, नींद में अच्छे-अच्छे सुहावने सपने आते हैं, मंदिरों के, संतों-महापुरुषों के दर्शन होते हैं और उस अच्छे सोचने का फल मिलता है, क्योंकि–

कर्मों का फल तो बंदे तुझे भोगना पड़ेगा,
पूछेगा आसमान तुझे, तूने क्या किया जमीन पर,
तू अभी से सोच रखियो, उसे क्या जवाब देगा,
कर्मों का फल तो बंदे तुझे भोगना पड़ेगा।

तब यमराज ने उसके सारे कर्मों की सूची देखकर कहा कि तुझे तो घोर नर्क भोगना पड़ेगा परंतु जो तूने एक सत्संग में दस मिनटों की गीता पढ़ी है, उसका तुमको स्वर्ग मिलेगा अब तू खुद ही फैसला कर कि पहले नर्क भोगेगा या दस मिनटों का स्वर्ग देखेगा? इस चोर ने कहा कि जब जीवन भर का नर्क भोगना ही है तो पहले दस मिनटों का स्वर्ग ही दिखा दो। उसे यमराज के दूत स्वर्ग ले आते हैं और कहते हैं कि सिर्फ दस मिनटों के लिये स्वर्ग है समझे? यह चोर जैसे ही अंदर स्वर्ग में प्रवेश करता है तो उसकी कहीं नजर नहीं पड़ी, न अप्सराओं के नाच गाने पर, न कल्पवृक्षों पर और न अमृत के कलशों पर, उसने देखा कि सामने वही महात्मा जी बैठे हैं जिन्होंने पृथ्वी पर दस मिनटों की गीता पढ़ाई थी, उसके मन में अचानक बड़ी श्रद्धा जाग उठी और लेटकर उसने उन महात्मा को दण्डवत् प्रणाम किया और कहा कि महात्मा जी यह आपकी कृपा है जो आज मुझे यह स्वर्ग मिला है आपने एक सत्संग में मुझे दस मिनटों की गीता पढ़ाई थी। महात्मा जी ने कहा कि मेरी कोई कृपा नहीं है तू सत्संग में आया तूने गीता पढ़ी उसका तुमको स्वर्ग मिला तो उस चोर ने कहा कि एक कृपा और करिये, महात्मा जी ने पूछा क्या चाहते हो? चोर ने कहा कि यह दस मिनट मुझे आपके पास मिले हैं, मुझे यहां भी गीता पढ़ाइये। संत ने कहा कि चलो यहां भी गीता पढ़ो, मेरा तो काम भी यही है गीता पढ़ाना। वहां भी दस

मिनट गीता पढ़ी, दस मिनटों के बाद यमराज के दूत आये और बोले दस मिनट हो गये तुम्हारा स्वर्ग खत्म अब बाहर निकलो, तब इस चोर ने कहा कि भाई मैंने तो यहां भी दस मिनट गीता पढ़ी तो इसका भी तो स्वर्ग मिलना चाहिए न? यमराज के दूत चकरा गये, उन्होंने सोचा कि नियम अनुसार तो हम इसे बाहर नहीं निकाल सकते क्योंकि इसने फिर दस मिनट गीता पढ़ी। तब उन्होंने कहा कि चलो दस मिनट और ले लो स्वर्ग। तो चोर ने कहा कि महात्मा जी मुझे फिर गीता पढ़ाओ। इस प्रकार गीता ही गीता पढ़ता गया। दूत आते गये और वापस जाते गये। बेचारे यमराज के आगे बड़ी समस्या खड़ी हो गई कि यह चोर तो जाकर स्वर्ग में बैठ ही गया है इसके पापों का फल कौन भोगेगा? यमराज यह समस्या लेकर भगवान् विष्णु के पास आये, भगवान् विष्णु क्षीर सागर में लेटे हुए हैं और माता लक्ष्मी उनके चरण दबा रही हैं। यमराज बड़े परेशान आए, भगवान ने पूछा यमराज क्या बात है बड़े परेशान हो, तब यमराज ने सारी बात बताई कि प्रभु क्या करूं एक चोर स्वर्ग में आकर बैठ ही गया है, गीता ही गीता पढ़ता जा रहा है। भगवान् प्रसन्न होकर बोले कि अरे वो तो बहुत ही अच्छा कर रहा है कि गीता पढ़ रहा है, तुम्हारी क्या समस्या है? यमराज बोले कि प्रभु उसके इतने पाप जो इसने धरती पर किये, उसका फल कौन भोगेगा? बस, यह समस्या है, आप समाधान करिये। भगवान् विष्णु मुस्कराकर बोले कि अरे यमराज तू किन पापों की बात कर रहा है, अरे वो तो गीता पढ़-पढ़कर सारे पापों से मुक्त हो गया है।

'नैव सन्ति हि पापानि पूर्व जन्म कृतानि च।'

क्या तुम भूल गये हो यमराज कि मैंने गीता में क्या वचन दिया है-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग्व्यवसितो हि स:।।
(गी.अ. ९/३०)

अर्थात् यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है। उसने भली भांति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। भजन में अपार शक्ति है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति:।।

(गी.अ. ९/३१)

अर्थात् वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शांति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

तब भगवान् विष्णु ने कहा कि यमराज अब यह चोर नहीं रहा यह धर्मात्मा महापुरुष हो गया है अब तो जो भी अगर इसका दर्शन करेगा उसके भी पाप नष्ट हो जायेंगे। यह सुनकर यमराज ने प्रसन्न होकर दोनों हाथ जोड़े। भगवान् की जय-जयकार की और कहा कि भगवन् आप कितने दयालु हैं इसलिये ही तो आपका नाम दयासागर है।

श्री गुरुदेव भगवान् का यह प्रवचन सुनकर मैंने भी महाराज जी से गीता नित्य पढ़ने का आशीर्वाद मांगा। वो मेरे जीवन का सबसे सौभाग्यशाली दिन था, उस दिन श्री गुरु महाराज जी ने दोनों हाथ मेरे मस्तक पर रखकर मुझे गीता पढ़ने का आशीर्वाद दिया। वो दिन और आज का दिन प्रात:काल गीता से ही शुरू होता है और गीता ही मेरे जीवन का आधार है।

कूटस्थोऽक्षर उच्यते

● श्रेयानन्द

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।
श्रीमद्भगवद्गीता-१५/१६

द्वौ इमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरः एव च।
क्षरः सर्वाणि कूट-स्थः अ-क्षरः उच्यते।।

पदच्छेद-

लोके = इह संसारे, इमौ = वक्ष्यमाणौ, द्वौ = द्वौ, पुरुषौ = शरीर स्थितौ, क्षरः = विनाशी, च = तथा, अक्षरः = अविनाशी, च = तथा, एव = तत्र, सर्वाणि = सर्वाणि, भूतानि = प्राणिजातानि, क्षरः = क्षरतीति, कूटस्थः = दृढ़ स्थितः-पूर्ण प्रपंचः, अक्षरः = अव्ययः, अच्युतः, अनन्तः, अक्षुण्णः-उच्यते = इति कथ्यते।

अन्वयार्थ-

लोके = इस संसार में, क्षरः = नाशवान, अपरा, जड़ क्षेत्र, च = तथा, अक्षरः = परा, चैतन्य, क्षेत्रज्ञ, अक्षरः = अविनाशी, एव = भी, इमौ = ये, द्वौ = दो श्रेणी के, पुरुषः = शरीर रूपी पुरवासी हैं, (इनमें) सर्वाणि भूतानि = सम्पूर्ण भूत प्राणियों के पुर (शरीर) तो, क्षरः = विनाशी, च = और, कूटस्थः = स्थाई जीवात्मा या माया प्रपंच मिथ्या होकर सत्य प्रतीत, अक्षरः = अविनाशी, उच्यते = कहा जाता है।

चौपाई-

नाशवान अथवा अविनाशी।
ये दो पुरुष जगत के वासी।।
प्राणि भूत शरीर विनाशी।
जीवात्मा यह है अविनाशी।।

In this world two energies there are,
perishable imperishable entities they are.

The bodies of all beings are perishable,
the Soul within the body is pure imperishable.

सामान्य अर्थ-

भगवान ने इस मंत्र का प्रसंग इसी अध्याय के ७वें मंत्र से जोड़कर बताया कि ब्रह्म आप्रकाम-सत्यकाम, अच्युत, अक्षुण्ण, अनिर्वचनीय, विविक्त निर्विशेष परब्रह्म से जीवात्मा चैतन्य आलोकित आभाषित है। वह पुरु (शरीर-चर्म पात्र) में स्थित अक्षर है। और जो व्यक्त, भाषित, दृश्यमान है वह क्षर (नाशवान) है। भगवान कहते हैं कि सम्पूर्ण प्राणियों के पुर (शरीर) नाशवान है। ब्रह्मा से लेकर ब्रह्मा रचित सम्पूर्ण जगत जो प्रकट अप्रकट इन्द्रिय गोचर, मनोगम्य, बुद्धिगम्य है, सब नाशवान हैं। जबकि जीवात्मा अविनाशी कूटस्थ है। इस कूटस्थ के परस्पर विरोधाभाषी अर्थ हैं। कूट का अर्थ है पूर्ण स्थाई। जिसे लोहार के यहां स्थिर लौह पिण्ड कहा जाता है। जिस पर सारे औजार हथियार पीटकर तेज किये जाते हैं, पर कूट (पिण्ड) पर प्रहार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे ही शरीर जन्मते, बदलते, घटते, बढ़ते, मिटते, मरते रहते हैं किन्तु अविनाशी जीवात्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह स्थिर है। उससे रहित कुछ है ही नहीं तो कैसे खिसकेगा। वह तो पूर्ण मदः पूर्ण मिदं है। अब कूट का विरोधी अर्थ है मिथ्या। चुगलखोर झूठी स्त्री को तथा माया को कूटनी कहा जाता है। जो ठगिनी कही गई है। भगवान कहते हैं कि यह सब माया का प्रपंच है

कि असत्य सत्य प्रतीत होता है। सत् का एक अर्थ है जिसका अस्तित्व हो। जो अनिर्वचनीय है, उसे आप सत् कैसे सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु सत् तो वही है। प्रमाण देकर जिसे सिद्ध किया जाये वह सत् है। किन्तु अर्निवचनीय के लिए आप प्रमाण कहां से जुटायेंगे। ऐसे ही जिसे आप प्रमाण देकर सत् सिद्ध कर रहे हैं, वह सब नश्वर है। और प्रमाण भी नश्वर है। तो व्यक्त भी असत् है। दर्पण में जल में छाया भास तभी है, जब नेत्र में ज्योति है। अतः उस प्रकाश के कारण ही क्षर अक्षर की अनुभूति है जिसे अगले मंत्र में भगवान उत्तम बताते हैं। भगवान् ने इसी क्षर अक्षर को गीता अध्याय १३ के पहले मंत्र में इदं जिसे बताया जा सके, कहकर क्षर शरीर प्रत्यक्ष कहा और क्षेत्रज्ञ को प्राहुः ऐसा कहते हैं, कहकर अविनाशी प्रत्यक्ष बताया। और १२वें मंत्र में उत्तम अन्य को **'अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते'** कहकर बताया कि जिससे क्षर अक्षर प्रकट, अप्रकट व्यक्त हैं वह न सत् ही है न असत् ही। अतः अव्यक्त अनिर्वचनीय, अचिन्तनीय है। आत्मा कोई किसी प्रभाव से बताया नहीं जा सकता तो क्या उसे असत् कह सकते हैं। आत्मा का अस्तित्व है। अतः सत् है। आत्मा की व्यापकता की उपमा आकाश से दी जाती है किन्तु आकाश तो पंचभूत होकर जड़ है। तो क्या आत्मा असत् है। नहीं। आत्मा आकाश को जानती है, अस्तित्व रहित नहीं है, अतः सत् है। आत्मा-परमात्मा दोनों ही सत् असत् से परे हैं और एक ही हैं। अभिन्न हैं, अद्वैत हैं। तो नाशवान अविनाशी को कहा गया है, वह है कौन सी बला। जान लो क्षेत्रविनाशी को–

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः।।
(गी.अ. १३/५)

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।
(गी.अ. १३/६)

क्षेत्रज्ञ अविनाशी है–

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।
(गी.अ. १३/१)

जो क्षेत्र को जानता है वह अविनाशी क्षेत्रज्ञ चैतन्य है। उसी को परा प्रकृति कहा है। इस क्षर को भगवान ने गीता के ७वें अध्याय के चौथे पांचवें मंत्र में अष्टधा प्रकृति को अपरा जड़ विनाशी कहा आठ का पहाड़ा हर चरण में गुणन फल घटता जाता है और ८ X ८ = ६४, ६+४ = १० = १ अर्थात् एको ब्रह्म पर आकर पूर्ण हो जाता है। और ९ परा प्रकृति ९ के संयोग से ८ X ९ = ७२ = ७+२ = ९ पूर्ण ही रहता है। ९ का गुणनफल सदा ९ ही रहेगा। क्योंकि अविनाशी है।

भगवान ने गीता के द्वितीय अध्याय सांख्ययोग में पहले ही बता दिया कि असत् की सत्ता नहीं और सत् का अभाव नहीं है। अर्थात् असत् नाशवान है। और सत् सदैव एक रस है। इन दोनों का तत्त्वज्ञान तत्त्वज्ञानि को है। और नाशरहित तू उसको जान जिससे यह सम्पूर्ण दृश्य वर्ग जगत् व्याप्त है। यही अक्षर जीवात्मा है। परब्रह्म परमेश्वर निर्गुण निराकार अनिर्वचनीय नेति नेति है। उससे सगुण निराकार माया रहित ईश्वर, उससे सगुण साकार माया सहित श्री-यश, ऐश्वर्य, धर्म, ज्ञान, वैराग्य युत भगवान। ऐसे ही आत्मा परमात्म स्वरूप निर्लेप है। जो कोष विज्ञानमय आनन्दमय कोष है, वही मनोमय कोष से जुड़कर नाशरहित अक्षर है। और आनन्दमय-विज्ञानमय से विस्मृत मनोमय अन्नमय-प्राणमय कोष से युक्त क्षर है। जैसे ईश्वर, ५ क्लेश (अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश), कर्म (धर्माधर्म), विपाक (फलदायक

परिपक्व शुभाशुभ कर्म) और आशय (अपेक्षित शुभाशुभ कर्म) रहित है। वैसे जीवात्मा भी इनसे मुक्त है। किन्तु फलोन्मुख होते ही क्षर प्रक्रिया से बन्धनानुभूत हो जाता है। वेद-उपनिषद के चारों महावाक्य= प्रज्ञानंब्रह्म (ऋगवेद, ज्ञान, अग्नि ऋषि, ऐतरीय उप.), तत्त्वमसि (सामवेद, उपासना, आदित्य ऋषि, छा.उप) अहं ब्रह्मास्मि (यजुर्वेद, कर्म, वायु ऋषि वृ.उप.) अयमात्मा, ब्रह्म (अथर्ववेद, विज्ञान अंगिरा ऋषि, वृ.उप.) जो क्रमशः ब्रह्म, तत्त्व, ब्रह्म, ब्रह्म बताये गये हैं उस अन्य उत्तम के लिए। और प्रज्ञानं, असि, अहं, अयमात्मा, क्रमशः उस अविनाशी जीवात्मा हेतु हैं।

यह विषय ही कूट है। क्योंकि विरोधाभास है। प्रथम रहस्य है पंचभूतों से युक्त स्थूल शरीर और उनसे रहित सूक्ष्म शरीर दोनों को अधिष्ठान मान करके उनसे अविच्छिन्न निर्विकार चैतन्य की स्थिति को कूट कहा है। और दूसरा जो 'मायावश परिच्छिन्न जड़ जीव कि ईश समान' सब मिथ्या भ्रम ही है। जागे जथा सपन भ्रम जाई की भांति कुछ नहीं है, कूट है। अर्थात् कुछ है ही नहीं। जिसे अक्षर, शब्द से कहा नहीं जा सके कूटस्थ है। भगवान भी अलौकिक तत्त्व बताने हेतु लौकिक शब्द का ही सहारा लेंगे। तो लौकिक प्रमाण से अलौकिक को कैसे बता सकते हैं। भगवान अलौकिक हैं। दोनों हैं। और दोनों ही नहीं है। वाणी विराम। विष्णु पुराण (१.२२-५५,५६) में वर्णन है कि ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त दो रूप हैं, जो क्षर और अक्षर रूप से समस्त प्राणियों में स्थित हैं। अक्षर परब्रह्म है, क्षर जगत् है। जैसे एक देशीय अग्नि का प्रकाश सर्वत्र है, उसी प्रकार सर्वजगत परब्रह्म की शक्ति है।

द्वे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्तं चामूर्तमेव च।
क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्वभूतेषवस्थिते।।
अक्षरं तत्परं ब्रह्म क्षरं सर्वमिदं जगत्।
एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।।

विष्णु सहस्रनाम (६४) में भगवान के नाम सदसत् क्षरमक्षरम् आये हैं। ब्रह्म सत् है। सत्यस्वरूप है। **'सदेव सोम्येदम्' - हे सोम्य! यह सत् ही पहले था। (छा.उप. ६.२.१.) अपरब्रह्म असत् है। 'वाचारम्भणं विकारो नाम धेयम्'**

(छा.उप. ६.१.४)

'सर्वाणि भूतानि क्षरम्। कूटस्थः अक्षरम्।

(श्रुति)

सर्वसारोपनिषद मंत्र १० में कहा गया है कि ब्रह्मा से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव चींटी के स्थूल शरीर- सूक्ष्म शरीर नाश होने पर जो शेष रहता है, वही कूटस्थ है।

ब्रह्मादिपिपीलिकापर्यन्त सर्वप्राणि-बुद्धिष्वावशिष्ट तयोपलभ्यमानः सर्वप्राणबुद्धिस्थो तथा यदा कूटस्थ इत्युच्यते।।

रूद्रहृदयोपनिषद में वर्णन है कि 'यह शरीर रूपी वृक्ष जीव और ईश्वर रूप दो पक्षियों को निवास देने वाले हैं। जीव रूपी पक्षी स्वीकृत-कर्म-फल भोगता है। ईश्वर उसके कर्म-फल भोग का साक्षी स्वरूप प्रकाशित रहता है। वह कर्म फल नहीं भोगता। माया के द्वारा ही जीव-ईश्वर भेद कल्पना हुयी है। यथार्थ में चिन्मय जीव ही साक्षात् ईश्वर है, अविनाशी है। दोनों ही चित्त स्वरूप से एक हैं। भेद कल्पित है। यह भेद दृष्टि जड़ता से उत्पन्न है। जड़ता क्षर है।

कूटस्थ का एक अर्थ और है। श्रुति वचन है-

'भूतं भविष्यात् प्रस्तौमि महद् ब्रह्मैकमक्षरम्। बहु ब्रह्मैकमक्षरम्।'

भूत भविष्य वर्तमान (होना) महद् जिससे सृष्टि हुयी, एक अक्षर ब्रह्म का ही होना है,

तात्पर्य है। भगवान ने कूटस्थोऽक्षरमुच्यते कहकर यह बताया कि सृष्टि कूटमाया, पर अक्षर ब्रह्म है। अर्थात् अक्षर से ही क्षर उत्पन्न हुआ है। अब विचार करो जो जिससे उत्पन्न होगा वैसा ही होगा। उत्तम अन्य अच्युत से अक्षर और क्षर से क्षर। तो क्षर का नाश कैसे। मात्र परिवर्तन ही क्षरण ही क्षर कह दिया गया। दूध से बना दही दूध का ही परिवर्तित रूप है किंतु अब वह दूध न बनकर मक्खन-छाछ में परिवर्तित होकर मूत्र-मल, खाद, मिट्टी और वनस्पति- आहार फिर दूध बन जायेगा।

ब्रह्मसूत्र ३.३.२३ में कहा है ब्रह्म संबंधी गुण किसी भी विद्या से ब्रह्म के अतिरिक्त लिये नहीं जा सकते। 'सम्भृतिद्युव्याप्त्यपि चातः।'

याज्यवल्क्य जी ने (वृ.उप. ३.८.३ से ३.८.७ तक) गार्गी से कहा कि अक्षर ने ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड धारण कर रखा है वह कुछ नहीं खाता, न उसे ही कोई खाता। भगवान ने उसे गीता अध्याय २, श्लोक १७ में बताया कि जिससे जड़ जगत व्याप्त है उस चैतन्य आत्म तत्त्व को अविनाशी जान, अविनाशी का नाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।

भगवान ने जिसे गीता के आठवें अध्याय के तीसरे मंत्र में आत्मा (ब्रह्म) अर्थात् आत्म ब्रह्म को आक्षर ब्रह्म कहा उसे ब्रह्मसू. १.३.१० में भी 'अक्षरमम्बरान्तधृतेः अक्षर ब्रह्म आकाश पर्यन्त जगत का धारक कहा।

भगवद्भक्ति ज्ञानप्रधान/निर्गुण निराकार में लय-विलय प्रेम प्रधान हैं समर्पण-निवास। भगवान ने पहले ही ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः कहा अतः सनातन का नाश नहीं है। अविनाशी है। जीव भी भगवान का है और माया भी भगवान की ही है। जिसे भगवान ने ७वें अध्याय के ५वें मंत्र में 'प्रकृतिं विद्धि में पराम्' भगवान कहते है प्रकृति भी उन्हीं की है तो यह जीव जगत् का संयोग भी सनातन हुआ। जगदेव हरी-हरिरेव जगत्। जगदीश से उत्पन्न जगत भी ब्रह्म सत्यं जगनमिथ्या भी कहते नहीं बनता। हां उसमें आसक्ति ही मिथ्या है। यह मानकर उत्तम की ओर उन्मुख होना ही स्वधर्म है। वह श्रेयस्कर है।

आधिभौतिक अर्थ-

प्राणी संसार को नश्वर समझे। शरीर को भी नश्वर माने तो बुराइयों से बच जायेगा। पाप नहीं करेगा। पाप का परिणाम दुःख। पुण्य का परिणाम सुख होता है। संतोष से बड़ा सुख नहीं है।

गोधन गज धन बजि धन और रतन धन खान।

जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

संतोष तभी आयेगा, जब मृत्यु अवश्यम्भावी है, यह स्मृति में रहे।

अरब खरब लौं द्रव्य है उदय अस्त लौ राज।

तुलसी जौ निज मरण है तो आवै कौने काज।।

इस प्रकार मृत्यु की सत्यता से संतोष, संतोष से सुख। भौतिक जीवन में सभी सुख चाहते हैं। और नाश होते शरीर में पुण्य पाप से मृत्युपरांत जीवन का ध्यान रहने से, जीवन शान्तिमय सुखमय, सरल, शुद्ध होगा। तो समाज, राष्ट्र विश्व में मारामारी, माथापच्ची गुत्थम-गुत्था नहीं होने से सर्वे भवन्तु सुखिनः कामना, कल्पना न होकर सच्चाई होगी।

आधिदैविक अर्थ-

भगवान का भक्त सर्वत्र भगवद्दर्शन करने से निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन् करहि विरोध के अनुसार सबसे उपासनामय व्यवहार

करेगा। जब भगवान चाहिए- भगवान से संसार से कुछ नहीं चाहिए तो समाज सुंदर स्वच्छ होगा। भगवान के अतिरिक्त कुछ भी रहना नहीं। जब जगत जा रहा है तो जगत के लाभ जाने से लोभ नहीं होगा। न लोभ न भय वही जीवन जगदीश-कृपा-मय है।

आध्यात्मिक अर्थ-

भगवान ने आठवें अध्याय के तीसरे मंत्र में **'अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यायत्ममुच्यते'** कहकर समझाया कि अक्षर ही परम ब्रह्म है उसका अंश आत्मा है। उसी स्व (आत्मा) को जानना सर्वश्रेष्ठ अध्यात्म विधा है। अतः आत्म (स्व) केन्द्रित आत्मवत सारे प्राणियों में स्थित एक अविनाशी का दर्शन करता है और विनाशी द्रव्य भोगमय संसार से अनासक्त रहता है। वह जीवित ही मुक्त है। क्योंकि वही सच्चा दर्शक है। जैसा कि भगवान ने गीता के १३वें अध्याय के २७वें मंत्र में बताया।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।

अन्ततोगत्वा आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक भाव का समन्वय एक समता भाव में हो जाता है। कोई भेद नहीं। ईश्वर सर्व भूतमय अहई।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।
(गी.अ. ६/२९)

परम पिता परमेश्वर की असीम अनुकम्पा से
श्रीमती निर्मला देवी धर्मपत्नी श्री जैमल सिंह (सुपुत्र स्व. श्री जैड.आर. चौधरी)
अपने निवास स्थान पर

श्रीमद्भागवत महापुराण कथा ज्ञान-यज्ञ

का आयोजन किया जा रहा है।

कथावाचक : ज्योतिर्विद पंडित गौरीदत्त शर्मा (गीतारत्न)
(सैन्य प्रशस्ति पत्र प्राप्त आचार्य, गीता आश्रम, दिल्ली कैंट)

सोमवार, 2 जून से रविवार, 8 जून 2014 तक

कथा स्थल : ग्राम लाहारी, पो. कोट्लू, तहसील- जैसिंहपुर, वाया लाम्बा गांव, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) - 176096

कथा ज्ञान यज्ञ में प्रतिदिन प्रातः 7.00 बजे से 8.00 बजे तक योगाभ्यास, प्रातः 8.00 बजे से 10.00 बजे तक पूजन हवन, प्रातः 10.00 से दोपहर 12.00 बजे तक पारायण, दोपहर 2.00 बजे से सायं 6.00 बजे तक प्रवचन, प्रतिदिन सायं 6.00 बजे आरती। दिनांक 8 जून प्रातः 8.00 हवन तदुपरान्त दोपहर 1.00 बजे से भण्डारा।

आप सभी ईष्ट मित्रों एवं परिवार सहित सादर आमंत्रित हैं।

सम्पर्क : 9818284090 (जैमल सिंह) 9810159232 (रवि सिंह)

गीता और वैराग्य

● स्वामी मुक्तानंद

श्रीमद् भगवद्गीता में हर तरह का उपदेश है। प्राणी मात्र के कल्याण के लिये भगवान् ने सुन्दर एवं अनुपम ज्ञान दिया है। फिर भी कुछ लोगों का मानना है कि गीता तो केवल कर्म करने का ही उपदेश देती है, इसमें वैराग्य का उपदेश नहीं है। ऐसा वो लोग कहते हैं जो वैराग्य के अर्थ को नहीं जानते अथवा वैराग्य शब्द से डरते हैं या फिर उन्होंने गीता का ज्ञान अपने सद्गुरु के चरणों में बैठकर सीखा नहीं। वे सोचते हैं कि वैराग्य व्यक्ति को संसार से विरक्त करके उसे निकम्मा व आलसी बना देता है। हमें तो जीवनभर कर्म करते हुए ही परमात्मा को प्राप्त करना है, यही गीता की शिक्षा है। परन्तु वास्तव में न तो गीता की शिक्षा ऐसी ही है और न ही यथार्थ वैराग्य मनुष्य को निकम्मा और आलसी बनाता है। अवश्य ही वैराग्यवान व्यक्ति संसारिक भोगों से अनासक्त होने के कारण अपने सभी कर्तव्य कर्म धीर, गम्भीर और शांत भाव से करता है, जिससे लोग उसे उत्साहहीन समझते हैं। परन्तु सत्य तो यह है कि सत्कर्म करने का सच्चा उत्साह वैराग्यवान व्यक्ति के हृदय में ही होता है। वैराग्य से व्यक्ति अपने मन पर संयम कर पाता है, यही तो भगवान् ने कहा है–

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।
(गी.अ.६/३५)

संसारिक भोग-सुखों में फंसा हुआ जीव न तो देश व विश्व की यथार्थ सेवा कर सकता है और न ही अपने जीवन का उद्धार कर सकता है। जिनका मन भोगों की लालसा में लगा रहता है, वे कभी भी अपने कर्तव्य का पालन सही ढंग से नहीं कर सकते।

गीता में मुख्य तीन साधन बताये गये हैं– कर्मयोग, भक्तियोग व ज्ञानयोग। इन तीनों में ही वैराग्य पहले आवश्यक है। वैराग्य के बिना न तो कर्मों में निष्कामता आयेगी, न ही ज्ञान की प्राप्ति होगी और न ही भक्ति में सफलता प्राप्त होगी। गीता में भगवान ने कहा–

'इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम्'
(गी.अ. १३/८)

सब ओर से मन को हटाकर सर्वभाव से अपने आपको अपने प्यारे प्रियतम के प्रति अर्पण करना है– **'मामेकं शरणं व्रज' (गी.अ. १८/६६)** के लक्ष्य पर चलना है। अपने हृदय रूपी मन्दिर को सब ओर से खाली करके अपने प्यारे के लिये उसे सजाना है और उसमें उसकी प्रतिष्ठा करनी है। प्रतिष्ठा भी ऐसी कि रोम-रोम में उसे रमा लेना है। गोपियां कहती हैं–

नाहिन रह्यो मन महं ठौर।
नंदनंदन अछत उर विच आनिये कत और।।

अर्थात् कहीं जगह नहीं रही, सब ओर मनमोहन समा रहा है। जब ज्ञान-विज्ञान को ही स्थान नहीं है, तब भोगों की तो बात ही कौन सी है? प्रेमी भक्त तो प्यारे के लिये सिर हाथ में लिये फिरता है–

'जो सिर साटे हरि मिले, तो तेहि लीजै दौर।'

संसारिक सुख-भोगों की तो वहां स्मृति ही नहीं है–

रमा विलासु राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी।।

इसलिये तो गीता में भगवान कहते हैं–

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

(गी.अ. १२/१७)

यह मंत्र वैराग्य का मूर्तिमान स्वरूप है। जो सुख-प्राप्ति में हर्षित न हो, सुख जाने पर द्वेष न करे, किसी बात का शोक अथवा चिंता न करे तथा मन में किसी चीज की कामना न हो। जो शुभ-अशुभ किसी भी कर्म का फल नहीं चाहता- ऐसा भक्त भगवान को प्रिय ही नहीं बल्कि अति प्रिय लगता है। ऐसा भक्त **'सब तज हरि भज'** का ज्वलन्त उदाहरण है।

एक महात्मा जी अपना दण्ड-कमण्डल लिये चलते-चलते एक राज्य में पहुंचे, परन्तु तब तक उस राज्य का प्रवेश द्वार बंद हो चुका था। रात्रि का समय था, अतः वो महात्मा जी द्वार के बाहर ही सो गये। दैवयोग से उस दिन उस राज्य के राजा का शरीर शान्त हो गया था। उसका कोई पुत्र नहीं था। राज्य पाने के लिये कुटुम्बी आपस में लड़ने लगे। एक कहता कि इस पर मेरा अधिकार है और दूसरा कहता कि मेरा अधिकार है। अंत में सबने मिलकर यह निर्णय लिया कि कल प्रातः द्वार खोलने पर जो सबसे पहले भीतर आये, उसी को राज्य दे दिया जाये। ऐसा निर्णय होने से विवाद मिट गया।

प्रातः होते ही प्रवेश द्वार खुला तो सबसे पहले वो महात्मा जी भीतर गये। भीतर प्रवेश करते ही हथिनी ने अपनी सूंड से महात्मा जी को उठाया और अपने ऊपर बैठा लिया। लोग जय-जयकार करते हुए महात्मा जी को दरबार में ले गये। महात्मा जी आश्चर्य में डूब गये और पूछने लगे– यह सब क्या है भाई? उन्होंने कहा– महाराज! हमने विचार कर लिया है कि आज इस राज्य में जो सबसे पहले आयेगा, उसी को राज्य देकर यहां का राजा बनाना है। आज आप ही सर्वप्रथम आये हैं, इसलिये आज से आप ही इस राज्य के राजा हैं।

महात्मा जी ने कहा– अच्छी बात है। महात्मा जी को नहला-धुलाकर, राजसी पोशाक पहना दी व उनका विधिवत् राज्याभिषेक कर उन्हें राजगद्दी पर बैठा दिया गया। राजा बने उस महात्मा जी ने आदेश दिया कि एक बक्सा लाओ। जब बक्सा आया तो महात्मा जी ने अपने पहले वाले वस्त्र, दण्ड-कमण्डल व खड़ाऊं आदि सब सामान उस बक्से में रखकर ताला लगा दिया और चाबी अपने पास रख ली। अब बाबा जी बढ़िया ढंग से राज्य करने लगे।

बाबा जी में न तो अपनी कोई कामना थी, न कोई चिंता थी और न ही उनके मन में भोगों की कोई लालसा थी। उन्होंने तो भगवान् का काम समझकर खूब बढ़िया रीति से राज्य किया। फलस्वरूप राज्य की बहुत उन्नति हो गयी। आमदनी बहुत ज्यादा हो गयी। राज्य का खजाना भर गया। प्रजा सुखी हो गयी।

राज्य की समृद्धि को देखकर पड़ोस के एक राजा ने विचार किया कि महात्मा जी तो वैरागी-त्यागी संत थे। लगता है वो राज्य करना तो जानते हैं परंतु युद्ध करना नहीं जानते होंगे। उसने चढ़ाई कर दी। यहां महात्मा जी के राज्य के सैनिकों ने समाचार दिया कि अमुक राजा ने हमारे यहां चढ़ाई कर दी है। महात्मा जी बोले– करने दो, हमने लड़ाई नहीं लड़नी है। थोड़ी देर में समाचार आया कि शत्रु की सेना नजदीक आ रही है। वे बोले– आने दो। फिर समाचार आया कि वो सेना द्वार पर आ चुकी है। महात्मा जी ने एक सैनिक को भेजकर पुछवाया कि वे यहां क्यों आये हैं? पड़ोसी राजा ने कहा कि हम यह राज्य लेने आये हैं। महात्मा जी बोले– राज्य

पाने के लिये युद्ध अथवा लड़ने की जरूरत नहीं है।

महात्मा जी ने अपना बक्सा मंगवाया। उसमें से अपना पहले वाला सामान निकाला और अपने सारे राजसी वस्त्र, आभूषण उतारकर, पहले वाले वस्त्र धारण कर लिये। तत्पश्चात वे पड़ोसी राजा से बोले कि लो आज से यह सब कुछ तुम्हारा हुआ। इतने दिन मैंने रोटी खायी है, अब आप खाओ। मैं तो इसलिये बैठा था कि तब इस राज्य को संभालने वाला कोई नहीं था। अब आप आ गये हैं तो इसको संभालो। व्यर्थ में लड़ाई करके जन व धन हानि क्यों करें।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि शत्रु की सेना आये तो उसको राज्य दे दो, प्रत्युत यह तात्पर्य है कि जो कार्य सामने आ जाए, उसे भगवान का काम समझकर, निष्कामभाव से बढ़िया ढंग से करें, अपनी उसमें कोई आसक्ति न हो।

अत: जीवन में वैराग्य आना बहुत जरूरी है। बिना वैराग्य के कर्म, भक्ति व ज्ञान अधूरे हैं। बिना वैराग्य के चंचल मन को वश में करना भी कठिन है। अतएव गीता वैराग्य की शिक्षा से परिपूर्ण है–

वैराग्यं समुपाश्रित: (गी.अ. १८/५२)

जीवन में ठोकर खाये बिना वैराग्य नहीं आता और वैराग्य आये बिना प्रभु-भक्ति नहीं होती। हम संसारिक सुख भी भोगते रहें और प्रभु से हमारा प्रेम भी बढ़े तो यह दोनों एक साथ नहीं हो सकते, क्योंकि भोग और भगवान दोनों का प्रेम एक साथ नहीं रह सकता। हां, भोग उनकी पूजा की सामग्री के रूप में अर्पित होकर रह सकते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है–

जहां राम तहं काम नहीं,
जहां काम नहिं राम।
तुलसी कबहूं कि रहि सकै,
रवि रजनी इक ठाम।।

संसार का प्रत्येक रिश्ता व प्रत्येक वस्तु असत् है, नश्वर है और इसके विपरीत परमात्मा से हमारा रिश्ता सत् है, अविनाशी है, वे ही हमारे सर्वस्व हैं– ऐसा जानना और मानना ही वास्तव में वैराग्य है– यही वैराग्य का सार है। ●

विशेष सूचना

(१) गुरु प्रसाद पत्रिका प्रत्येक मास के दिनांक ०२/०३ को अग्रिम प्रकाशित कर डाक में डाली जाती है। यदि किसी सदस्य को सम्बन्धित महीने के दिनांक १० तक न मिले तो नजदीकी डाकघर से जानकारी प्राप्त करें। फिर भी यदि किसी सदस्य को पत्रिका न मिले तो कार्यालय को सूचित/पत्र व्यवहार करें। यदि पत्रिका उपलब्ध होगी तो पुन: भेज दी जाएगी।

(२) किसी सदस्य के दिये हुये पते में परिवर्तन होता है तो इसकी सूचना पुराने पते सहित नया पता कार्यालय को भेजें, ताकि पत्रिका नये पते पर भेजी जा सके।

सुख और शान्ति

● स्वामी गीता मातेश्वरी (गीता भास्कर)

गतांक से आगे (भाग-३)

बहुत ही सुंदर विषय चल रहा है– गीता के द्वारा हम सुख और शान्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

गीता तो स्वयं ही सुख और शान्ति की मूरत हैं। बस मां की शरण में आ जाओ– सुख-शान्ति मिल जायेगी। महात्मा गांधी जी यही तो करते थे। उन्होंने लिखा– 'जब भी मेरे देश पर कोई संकट आन पड़ता है, मैं गीता मां की गोद में बैठ जाता हूं। गीता मां की कृपा से मेरी हर समस्या का समाधान हो जाता और मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल जाता।'

भगवान् गीता में शान्ति का दूसरा सूत्र बता रहे हैं– **ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम् (४/३९)** अर्थात् 'ज्ञान प्राप्त करो और शान्ति पाओ।'

२. ज्ञान के द्वारा–

शान्ति प्राप्ति का प्रथम सूत्र है– त्याग के द्वारा और दूसरा सूत्र है– ज्ञान के द्वारा। बिना ज्ञान के शान्ति प्राप्त नहीं होगी। **धनं लब्ध्वा परां शान्तिं** नहीं कहा, **सम्पतिं लब्ध्वा परां शान्तिं** भी नहीं कहा, **पुत्रान् लब्ध्वा परां शान्तिम्** भी नहीं कहा। क्यों? क्योंकि यदि धन से शान्ति मिलती तो रावण जिसके पास सोने की लंका थी, दुनिया का सब वैभव था– परन्तु क्या शान्ति थी? नहीं। सोने की लंका तो थी, एक दिन भी चैन से सो नहीं पाया। बहुत सारे पुत्र हों, शान्ति मिल जायेगी? नहीं, ऐसा होता तो रावण के पास एक लाख पूत और सवा लाख नाती थे, फिर भी शान्ति नहीं। अंत में दिया-बाती करने वाला भी कोई नहीं था। दिया-बाती उसने किया, जिसे जीते जी ज्ञान हो गया, रावण व उसके वैभव को ठुकरा कर प्रभु श्रीराम की शरण ले ली– विभीषण जी। विभीषण जी को परम शान्ति मिली।

बिरला जी बहुत बड़े सेठ हुए, जिन्होंने बिरला मन्दिर बनवाये। वह भी अपनी जीवनी में लिखकर गये कि मैंने दुनिया में बहुत धन कमाया, बहुत यात्रा की, परन्तु अब जिन्दगी का सार लिखकर जा रहा हूं कि प्रभु की भक्ति बिना जीव सुखी नहीं हो सकता। यह बात उन्होंने तब लिखी, जब उन्हें इस बात का बोध हो गया।

सिकन्दर जैसे बादशाह भी दुनिया से खाली हाथ चले गये। अंत समय में जब देखा कि मेरे साथ कुछ भी नहीं जा रहा तो अपने सेवकों से कहा कि जब मेरा शरीर दफनाना तो मेरे ये दोनों हाथ खाली हाथ कब्र के बाहर रख देना ताकि संसार के लोग मुझसे नसीहत लें कि कितना भी धन एकत्रित कर लो, किन्तु अंत समय में यह नाशवान धन साथ जाने वाला नहीं है। इस बात का यदि ज्ञान जीते जी हो जाये तो शान्ति की प्राप्ति हो सकती है।

जिस ज्ञान से शान्ति की प्राप्ति हो, उस ज्ञान को प्राप्त कैसे किया जाये? अतः ज्ञान प्राप्ति के छः सूत्र भगवान् ने गीता में बताये–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।
(गी.अ. ४/३४)

तीन सूत्र इस श्लोक में बताये हैं–

१. दण्डवत् प्रणाम

२. कल्याण हेतु प्रश्न

३. सेवा करना

अगले तीन सूत्र बताये हैं–

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

(गी.अ. ४/३९)

४. श्रद्धा

५. तत्परता और

६. इन्द्रियों का संयम

एक-एक सूत्र पर बहुत लम्बी व्याख्या की जा सकती है। संक्षेप में इतना ही कहना है कि जब भी जीवनमुक्त महापुरुष की शरण में जायें अथवा तत्त्वज्ञानी सद्गुरु की शरण लें तो उनके चरणों में जाकर विनम्रता पूर्वक साष्टांग प्रणाम करें। फिर उनसे अपने कल्याण हेतु प्रश्न करें, ठीक उसी प्रकार जैसे अर्जुन ने भगवान से कहा कि जिसमें मेरा निश्चित रूप से कल्याण हो, वही मुझे उपदेश दीजिये–

'यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे'

(गी.अ. २/७)

आज तो सद्गुरुदेव के पास जाकर हम संसारिक प्रश्न पूछते हैं– गाड़ी कैसे आयेगी, कोठी कब बनेगी, बेटा कैसे सैट होगा अथवा बेटी का विवाह कब होगा आदि-आदि। जैसा प्रश्न होगा, गुरु भी वैसा ही उत्तर देकर टाल देंगे। ज्ञान पाना है तो यह पूछें कि मैं इस संसार में क्यों आया, मुझे करना क्या है, मुझे भगवद्-प्राप्ति कैसे होगी आदि-आदि। अर्जुन ने अपने कल्याण का मार्ग पूछा तो भगवान् ने उसे गीता जैसा अलौकिक ज्ञान दिया, जिसे पाकर अर्जुन कृतकृत्य हो गये।

तीसरा जिससे ज्ञान प्राप्त करें, उनकी तन-मन-धन से सेवा करें। सबसे बड़ी सेवा है– उनके आदेश का पालन करें। कहा भी है–

सेवा करूं तो तन संवर जाये।
सिमरन करूं तो मन संवर जाये।।
हर बात सच्ची है मेरे सद्गुरु की।
अमल करूं तो जीवन संवर जाये।।

चौथा सूत्र याद रखें– ज्ञान-प्राप्ति के लिये मन में श्रद्धा का होना अति अनिवार्य है। बिना श्रद्धा के ज्ञान जीवन में उतरेगा नहीं। ज्ञान पाने के लिये तत्परता भी होनी चाहिए। आंधी हो, तूफान हो, सर्दी-गर्मी अथवा वर्षा हो, जहां गीता जैसा अलौकिक ज्ञान मिलता हो, वहां जाने के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे एक धन का लोभी धन पाने के लिये हमेशा लालायित रहता है। और छठा सूत्र है– इन्द्रियों का संयम।

श्रद्धा भी है, तत्परता भी है किन्तु वहां जाकर भी इन्द्रियों पर संयम नहीं है तो ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। सत्संग में बैठे हैं, किन्तु मन इधर-उधर की बातों में उलझा है तो सद्गुरु की बताई हुई बात को हम सुन ही नहीं पायेंगे, धारण कैसे कर पायेंगे? क्योंकि जहां मन होता है, इन्द्रियां भी वहीं होती हैं। अतः संयम अति आवश्यक है। अंततोगत्वा, ये छः सूत्र जीवन में अपनाने से तात्विक ज्ञान प्राप्त होगा और ज्ञान से परम शान्ति की प्राप्ति होगी।

'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम्।'

कब मिलेगी शान्ति? प्रभु बोले– तत्काल। हां उसी समय शान्ति मिल जायेगी, समय नहीं लगेगा– **अचिरेणाधिगच्छति।** अर्थात् बिना विलम्ब के तत्काल भगवद्-प्राप्ति रूपी परम शान्ति की प्राप्ति हो जायेगी। जैसे वर्षों का अंधकार एक छोटी सी दियासलाई जलाने से तत्काल दूर हो जाता है अथवा सूर्य के उदित होते ही अंधकार को भागना पड़ता है।

३. तीसरा सूत्र है शान्ति प्राप्त करने का– **शरणागतिः।**

प्रभु की शरण सच्चे मन से लेने पर परम शान्ति की प्राप्ति हो जाती है–

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

(गी.अ. १८/६२)

शान्ति प्राप्ति का यह अंतिम सूत्र गीता में भगवान ने बहुत ही सुंदर बताया। शान्ति के साथ-साथ परम पद की भी प्राप्ति हो जायेगी। शर्त है कि सर्वभाव से भगवान की शरण में आयें। पूर्ण समर्पण भाव ही सर्वभाव है।

एक भक्त भगवद्-प्राप्ति करने के लिये कठिन साधना करता था। वह पीपल के पेड़ के साथ उल्टा लटका प्रभु-नाम जपता था। एक दिन नारद जी उसी मार्ग से निकले। भक्त ने उन्हें प्रणाम किया और निवेदन किया कि मेरे लिये भी प्रभु से पूछना कि मुझे अपना दर्शन कब देंगे? नारद जी ने उस भक्त का निवेदन प्रभु के समक्ष रखा तो प्रभु बोले– जाकर उससे कह दो कि इस पीपल के पेड़ के जितने पत्ते हैं, उतने जन्म उसको लेने पड़ेंगे, तब उसे मेरा दर्शन होगा।

देवर्षि नारद लौट आये और भगवान् की बात उस भक्त को बता दी। यह सुनते ही कि इस पेड़ के जितने पत्ते हैं, उतने जन्मों के बाद उसे भगवान का दर्शन होगा– भक्त नाचने लगा, झूमने लगा। गाने लगा, नेत्रों से खुशी के आंसू बहने लगे। नारद जी आश्चर्य में डूब गये और सोचा कि इस भक्त को क्या हो गया है? यह इस प्रकार नाच क्यों रहा है? क्या इसने ठीक से सुना है?

जैसे ही सच्चे मन से भक्त प्रभु-प्राप्ति के लिए तपड़ने लगा, रोने लगा, पूर्णभाव से प्रभु-चरणों में समर्पित हुआ तो तत्काल भगवान् नारायण शंख, चक्र, गदा व पद्म धारण कर चतुर्भुज रूप में प्रकट हो गये। नारद जी चकित होकर बोले– यह क्या प्रभु? अपने तो मुझे झूठा बना दिया। अभी तो कुछ पल ही बीते हैं और आप यहां? प्रभु बोले– जब तुमने मेरे से इस भक्त के लिये निवेदन किया था, उस समय इस भक्त के मन में अहम भाव था, साधना का अभिमान था, किंतु अब इसका सारा अभिमान, अहम भाव नष्ट हो गया। प्रेमाभक्ति हृदय में जाग्रत हो गयी। सर्वभाव से इसने मेरी शरण ले ली। नेत्रों के अश्रुओं से इसके जन्म-जन्मांतर के पाप धुल गये। अतः मुझे तत्काल आना पड़ा।

यह है– सर्वभाव। भक्त ने भगवान का दर्शन किया, चरणों में गिर गया। प्रभु-भक्ति में डूब गया। उसे परम शान्ति की प्राप्ति हुई और मरने के बाद परम धाम की प्राप्ति की।

अस्तु, गीता पढ़ो, गीता जी का ताबीज, जो रक्षा-कवच है, उसे धारण करो– सुख और शान्ति की प्राप्ति होगी। गीता मां सकल सुखों और परम शान्ति की खान है। प्रभु का नाम जपो। नाम जपने से सारे दुःख-क्लेश कट जायेंगे–

जिनकर नाम लेत जग माहीं।
सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

प्रभु का नाम सारे अमंगलों की जड़ को ही समाप्त कर देता है। घर को स्वर्ग बनाना चाहते हैं, सुखी होना चाहते हैं तो गीता के इन सूत्रों को याद रखें, धारण करें, तत्काल सुखी हो जायेंगे और परम शान्ति की प्राप्ति होगी–

'तत्प्रसादात्परां शान्तिम्।'

* * *

देवी भागवत : श्री जगदम्बिकायै नमः

गतांक से आगे....

● जैमल सिंह

व्यास जी ने राजा जनमेजय को बताया कि भगवती मां का यह सारा किस्सा मैंने लोमश मुनि से सुना था अतः आप भी मां भगवती की भक्ति-प्रेम सहित आराधना करो। राजा जनमेजय ने प्रार्थना की कि मुझे इस अनुष्ठान की विधि-विधान बताओ ताकि मैं उस पर अग्रसर हो सकूं। तब व्यास जी ने बताया कि यज्ञ तीन प्रकार के होते हैं- मुनियों के लिये सात्विक, राजाओं के लिए राजस और राक्षसों के लिए तामस। सुख पाने के लिए न्याय से कमाया हुआ धन ही उपयोगी होता है। विद्वानों ने कर्म को ही प्रधान माना है। वे कहते हैं कर्ता के, मंत्र के और द्रव्य के भेद से फल विपरीत हो जाता है, जैसे पांडवों ने राजसूय यज्ञ किया, भगवान श्रीकृष्ण भी स्वयं आये थे। भारद्वाज प्रभृति प्रकाण्ड विद्वानों का समाज जुटा था। लगातार एक महीने तक यज्ञ चला और पूर्णाहुति हुई थी, फिर भी पांडवों को बहुत कष्ट भोगने पड़े, जो सबको विदित है।

द्रव्य, श्रद्धा, क्रिया, ब्राह्मण, देश और काल इन सभी साधनों से यज्ञ पूर्ण होते हैं। मानस यज्ञ के अलावा सभी यज्ञों में कुछ कमी रह जाती है पर सभी यज्ञों में मन की शुद्धि अत्यंत आवश्यक है। फिर परब्रह्मस्वरूपा भगवती परमेश्वरी का ध्यान करें, उनके दर्शन पाकर मनुष्य ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। जो भगवती मां जगदम्बिका की उपासना करता है वह कृतकृत्य हो जाता है। अतः गुरुदेव के कथनानुसार अखिल भूमण्डल की अधिष्ठात्री भगवती जगदम्बिका का ध्यान करें तथा उनके माहात्म्य गुणों का श्रवण-मनन करें। इस प्रकार का यज्ञ मोक्षरूपी फल देता है, इसमें कोई संशय नहीं है। इसके अतिरिक्त जितने सकाम यज्ञ हैं फल अनित्य है। अतः अब आप विधिपूर्वक देवी यज्ञ करो जिसका अनुष्ठान सृष्टि के पूर्व काल में भगवान विष्णु ने किया था जिसके लिए सर्वप्रथम वेद के उत्तम ज्ञाता एवं विधि के पूर्णज्ञाता ब्राह्मण होने चाहिए जिन्हें देवी के बीज मंत्र का विधान मालूम हो तथा जो मंत्र उच्चारण की शैली को भलीभांति जानता हो। ये ब्राह्मण (याजक) बनाये जाएंगे तुम यजमान रहोगे। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ करके अपने पिता का उद्धार करो। तब राजा जनमेजय ने अपने पितामह (व्यास जी) से पूछा कि भगवान विष्णु के द्वारा कैसे अम्बिका यज्ञ हुआ। भगवती ने सुमेरू पर्वत को बहुत सुंदर ढंग से सजाया। मरीचि, नारद, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष प्रजापति और वशिष्ठ ये ब्रह्मा जी के मानस पुत्र थे। कमलयोनी ब्रह्मा ने सृष्टि रचकर सुमेरू पर्वत पर एक सुंदर ब्रह्मलोक बनाया फिर भगवान विष्णु ने लक्ष्मी जी के लिये विष्णुलोक (बैकुण्ठ) प्रकट किया। शिवजी ने भी कैलाश को अपना बसेरा बनाया। फिर समुद्र मंथन हुआ जिसमें कई रत्न निकले। परिजात वृक्ष, ऐरावत हाथी, कामधेनु गाय, उच्चैश्रवा घोड़ा और रम्भा आदि बहुत सी अप्सराएं निकलीं। सबको इन्द्रदेव ने स्वर्ग में रख लिया। इसी प्रकार तीन प्रकार की सृष्टि हुई। इसी बीच उन्हें परमशक्ति मां भगवती याद आ गई और उनका 'अम्बिका' यज्ञ करने की बात हो गई, तब उन्होंने (श्रीहरि ने) ब्रह्मा, विष्णु, महेश को बुलाया तथा विस्तार के साथ यज्ञ सम्पन्न हुआ, जिसमें सत्ताइस परमश्रेष्ठ ब्राह्मणों ने काम किया तथा यज्ञ समापन पर आकाशवाणी हुई। विष्णु तुम सभी देवताओं में उच्च स्थान प्राप्त करो, सभी देवता आपकी पूजा करेंगे। आपकी भक्ति से अनेकों मानव जीवन धारण करेंगे, सभी यज्ञों में आपकी प्रधानता रहेगी। सारी जनता तुम्हारी पूजा करेगी और आप वरदाता बनकर रहोगे। भूमि पर जब-जब हानि होगी तब-तब मनुज शरीर धारण कर आप रक्षा करना। मां भगवती आपकी शक्ति रूप से सहायता करेगी। आप उनका आदर पूजन करते रहना। आकाशवाणी को सुनकर

सभी के मन में मां भगवती के प्रति भक्ति जाग उठी।

राजा जनमेजय ने कहा जब विष्णु भगवान ने मां का यज्ञ किया तब उन्हें मां की महिमा सुनने की लालसा जाग्रत हुई। तब वेदव्यास जी ने कहा मां की महिमा से पहले एक इतिहास कहता हूं। एक सूर्यवंशी महान तपस्वी राजा ध्रुवसंधि हुए। वे बड़े धर्मात्मा थे। अयोध्या उनकी राजधानी थी। उनके राज्य में सभी लोग अपने-अपने धर्म पर तत्पर थे। राजा की दो रानियां थीं एक का नाम मनोरमा और दूसरी का नाम लीलावती था मनोरमा की कोख से सुदर्शन हुआ तथा लीलावती से शत्रुजित उत्पन्न हुआ। दोनों बालक बड़े होनहार थे। एक बार राजा ध्रुवसंधि जंगल में शिकार खेलने गये, वहां सिंह की चपेट में आ गये और मृत्यु को प्राप्त हुए। अन्ततोगत्वा राज्य में खलबली मच गई। वीरसेन जो अपने दौहित्र का कल्याण करने के विचार से सैनिकों के साथ युद्धभूमि में आ गया और युधाजित से लड़ाई हुई जिसमें राजा वीरसेन मारा गया। यह सब जानकर मनोरमा भय से घबरा उठी। उसने सोचा अवश्य ही युधाजित राज्य के लोभ से मेरे बालक को भी मार डालेगा। इस प्रकार मन ही मन विचार करके अपने प्रधानमंत्री विदल्ल जी को बुलवाया और एकांत में कहा मेरे पिताजी युद्ध में काम आ गये, बच्चा छोटा है, द्वेषी राजा युधाजित बड़ा बली है, अब क्या करना चाहिए। तब मंत्री विदल्ल ने बताया यहां कदापि नहीं रहना चाहिए। हमारे मामा सुबाहु काशी में हैं, वह हमारी रक्षा कर लेंगे। अतः मनोरमा एक दासी तथा मंत्री विदल्ल को साथ लेकर काशी चल पड़ी। रास्ते में डाकुओं ने लूट लिया। फिर वह किसी तरह गंगा पार कर चित्रकूट पहुंच गयी और भरद्वाज आश्रम पहुंचकर उनसे वार्तालाप हुई। मंत्री विदल्ल ने सारा किस्सा कह सुनाया। तब मुनि भरद्वाज ने उसे अभयदान दिया और कहा इस आश्रम में आप अपने बच्चे का लालन-पालन करो। आपका बच्चा सुदर्शन समय पर राजा बनेगा। वहां उसे दासी और मंत्री विदल्ल का साथ रहा।

राग द्वेष सुख के बाधक

वीरेन्द्र कुमार शुक्ला

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

व्यक्ति की पांच इंद्रियां- श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण और उनके पांच विषय शब्द स्पर्श रूप, रस, गंध, इनमें अनुकूलता- प्रतिकूलता की मान्यता से राग द्वेष उत्पन्न होते हैं। अर्थात् राग द्वेष 'मैं-पने' से ही होते हैं, इन्द्रियों या उनके विषयों से नहीं होते। मन में अनुकूलता या प्रतिकूलता की मान्यता ही राग द्वेष की प्रतीति कराती है। वर्षा किसान को तो अच्छी लगती है पर कुम्हार को अच्छी नहीं लगती। ऐसे ही एक व्यक्ति को ठंडी हवा, गर्मी में तो अच्छी लगती है, पर ठंड में बुरी लगती है।

राग द्वेष से निवृत्ति कैसे हो इस पर हम विचार करें। केवल वैराग्य होने से राग द्वेष की निवृत्ति नहीं होती, वरन् परमात्मा का साक्षात्कार करने से हो जाती है। राग द्वेष हमारी क्रियाओं के संचालक न बनें, हमें भगवान को ही शरीर तथा क्रियाओं का संचालक मानना चाहिये। इससे राग द्वेष का बंधन ढीला हो जायेगा। रामचरितमानस में श्री भरत चरित्र इसका उदाहरण है-

राउर बदि भल भव दुख दाहू।
प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू।।

उनकी मान्यता थी- **सम्पति सब रघुपति कै आही।**

चित्रकूट में भरत जी ने सब कुछ निर्णय श्रीराम पर ही छोड़ दिया। हमारी भी कर्मों में प्रवृत्ति शास्त्रानुसार हो, राग द्वेष के वशीभूत होकर न हो

तो कर्म बंधन कारक नहीं बनेंगे। सृष्टि, प्रकृति का कार्य है और शरीर सृष्टि का अंश है। शरीर के प्रति ममता रहने पर ही राग द्वेष होते हैं। शास्त्र के आधार पर कर्मों में प्रवृत्ति या निवृत्ति से राग द्वेष मिट जाते हैं। जिन्हें शास्त्र का ज्ञान नहीं है वे केवल इतना मान सकते हैं कि जो कार्य हम अपने लिये नहीं चाहते उसे दूसरों के लिये न करें। महर्षि वेदव्यास जी के शब्दों में **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'**। राग द्वेष से रहित मनुष्य वेदों का सार स्वतः जान लेता है। उससे निषिद्ध क्रियाएं नहीं हो सकतीं तथा उसका स्वभाव स्वतः शास्त्र के अनुकूल बन जाता है। राग द्वेष अन्तःकरण के धर्म नहीं हैं विकार हैं, क्योंकि धर्म सदा कायम रहता है तथा विकार क्षीण होकर नष्ट होने वाला होता है। शुद्ध-अशुद्ध स्वभाव, राग द्वेष से ही बनते हैं। हमारे प्रारब्ध का फल हमारा स्वभाव है। स्वभाव हम मिटा तो नहीं सकते पर उसे शुद्ध अवश्य कर सकते हैं। जैसे गंगोत्री की ऊंचाई से अधिक ऊंचा बांध बनाया जाये तो गंगा के प्रवाह को रोका जा सकता है। पर यह सम्भव नहीं है। तब हम, कम ऊंचा बांध बनाकर उसमें से नहरें निकालकर उसके प्रवाह को बदल सकते हैं। इसी तरह विभिन्न सात्विक क्रियाओं से हम स्वभाव की शुद्धि कर सकते हैं। निष्काम भाव से संसार की सेवा करना, राग द्वेष मिटाने का अचूक उपाय है। कारण, पदार्थ तत्त्वतः संसार से अभिन्न है, उसको अपना मानना ही बंधन कारक है। प्रत्येक साधक के लिये संसार कर्तव्य पालन का क्षेत्र है सुखी दुखी होने का नहीं है। दूसरों के सुख-दुख की सहभागिता ही संतत्व है। 'पर दुख दुख सुख सुख देखे पर'। सुख-दुख का कारण दूसरों को मानने से ही, राग-द्वेष होता है, जिसके परिणामस्वरूप संसार भगवत्स्वरूप नहीं दिखता, जड़ और नाशवान दिखता है। अगर राग द्वेष न हों तो सब कुछ चिन्मय परमात्मा ही है। इस तथ्य को पहचानने के भी साधन हैं। जैसे सत्संग, भजन आदि में यदि कोई व्यक्ति बाधा पहुंचाता है तब यदि क्रोध आवे तो समझना चाहिये कि सत्संग में आपका राग है। पर यदि क्रोध की जगह रोना आवे तो समझना चाहिये कि सत्संग में आपका प्रेम है। अपने में कमी देखकर ही रोना आता है। दूसरे के धर्म या सम्प्रदाय के लोग यदि हमें बुरे लगें तो समझना चाहिये कि हमें अपने धर्म में राग है।

लाभ का आकर्षण भी राग का ही फल है। मनुष्य को जब प्राप्त सुख से अधिक सुख दिखता है, तो वह लाभ के लोभ में विचलित हो जाता है। एक घंटे के सौ रुपये मिल रहे हों और यदि उसे एक हजार रुपये अन्य जगह दिख रहे हों, तो वह सौ रुपयों की स्थिति से विचलित हो जावेगा और हजार रुपयों की स्थिति में चला जायेगा। इसी तरह निद्रा, आलस्य और प्रमाद के तामसी सुख से विषयजन्य राजस सुख उसे श्रेष्ठ लगेगा। फिर उससे भी ऊंचा उठकर सात्विक सुख के लिये विचलित हो जाता है, इसमें भी यदि वह राग नहीं रखेगा तब वह उससे भी ऊंचा उठकर आत्यन्तिक सुख को प्राप्त करेगा। यह सुख की चरम अवस्था है, हद है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

यह श्लोक सभी साधनों की कसौटी है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग के साधनों में अपनी स्थिति समझने के लिये यह श्लोक महत्वपूर्ण है। शरीर मन बुद्धि इन्द्रियां सब प्रकृति के राज्य में होते हैं। जब व्यक्ति प्रकृति से तादात्म्य कर लेता है तब वह प्रकृतिजन्य अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में राग द्वेष के माध्यम से स्वयं को सुखी-दुखी अनुभव करता है। यदि वह प्रकृति से सम्बंध विच्छेद कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाये तो प्राकृतिक सुख-दुख की पहुंच उस तक हो ही नहीं सकती। इस तरह वह राग द्वेष से मुक्ति पा सकता है। परमार्थ की ओर अग्रसित व्यक्ति के लिये भी राग द्वेष उसके साधन को लूटने वाले होते हैं। स्वाभाविक कर्मों का त्याग करना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है। पर उन कर्मों का राग पूर्वक करना या न करना उसके वश में होता है। कर्म यदि सेवा भाव से करे जावें तो वे बंधन कारक नहीं होते।

सुप्रसिद्ध संत ब्रह्मलीन श्री रामचन्द्र केशव डोगरे जी महाराज द्वारा श्रीमद्भागवत् महापुराण पर दिव्य विवेचना

एकादश एवं द्वादश स्कन्ध की विवेचना

गतांक से आगे...

युवक की पत्नी से अनुरोध किया तो उसने कहा– मेरी वृद्ध सास ने तो संसार के सभी सुख भोग लिये हैं। मैं तो अभी जवान हूं। मैंने तो अभी संसार के सुख देखे नहीं हैं। मैं क्यों मरूं?

इस प्रकार युवक के सभी रिश्तेदारों ने पानी पीने से इनकार कर दिया। उल्टे वे सब महात्मा से कहने लगे– महाराज, आप ही पी लीजिये। आपके पीछे रोने वाला तो कोई है नहीं। आप हमेशा कहते हैं कि परोपकार सबसे बड़ा धर्म है सो आप स्वयं परोपकार कर दीजिये। हम आपके पीछे हर साल श्राद्ध और ब्रह्मभोज करेंगे।

महात्मा ने पानी पी लिया। पुत्र को अपने रिश्तेदारों के व्यवहार और प्रेम का अनुभव ठीक से हो चुका था। उसने उठकर महात्मा के साथ ही घर छोड़ दिया। मैंने संसार की आसरता देख ली। कोई किसी का नहीं है। सभी संबंध स्वार्थपरक ही हैं। वास्तविक संबंध तो एक ईश्वर का ही है। महात्मा कबीर भी कहते हैं–

मन फूला-फूला फिरे जगत में कैसा नाता रे।
पेट पकड़ कर माता रोवे, बांह पकड़कर भाई,
लपट-लपट कर तिरिया रोवे, हंस अकेला जाई।
मन फूला-फूला...
जब तक जीवे माता रोवे, बहन रोवे दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवे, फिर किये घर बासा।।
मन फूला-फूला....

हे उद्धव, मैं हमेशा तुम्हारे साथ ही हूं। हमेशा मेरा स्मरण करते रहना भी सिद्धि ही है। **'सिद्धि स्मरण संसिद्धिः।'** किन्तु उद्धव का उद्वेग मिटता नहीं है। सो भगवान ने उनको चरण पादुका दी। अब उद्धव को लगा कि भगवान उनके साथ हैं। अतएव श्रीकृष्ण को हमेशा अपने साथ रखो। परमात्मा के सान्निध्य का सतत अनुभव करो। तुकाराम संत ने कहा था– चाहे मेरा वंश रहे न रहे, चाहे मुझे भूखों मरना पड़े, किन्तु प्रभु मेरे साथ रहें।

उद्धव जी बद्रिकाश्रम आए। उनको सद्गति मिल गई और वे कृतार्थ हो गये। फिर यादवों के विनाश की कथा सुनाई।

द्वारिका लीला की समाप्ति के समय पंढरपुर में पुण्डलिक भक्त हुआ जिसे कृतार्थ करने के लिये, द्वारिकानाथ जी विट्ठलनाथ बने। पुण्डलिक घर में से जल्दी बाहर नहीं आये, कमर में भगवान के वेदना होने लगी, सो वे कमर पर हाथ रखकर खड़े रहे। भगवान कहते हैं– कभी निराश न होना, मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हारे लिये हमेशा खड़ा ही हूं। वे कटि पर हाथ रखकर यही सूचित करते हैं कि उनकी शरण में आने वाले के लिए संसार केवल कटिभर ही गहरा है। उतने जल में कोई डूब नहीं सकता। अपने पापों का प्रायश्चित करके मेरी शरण में आओगे तो संसार सागर से तर जाओगे।

श्रीकृष्ण भगवान साक्षात् परमात्मा हैं। वे पुण्डलिक के लिए द्वारिका से पंढरपुर तक गये थे। वे अब भी पंढरपुर में विद्यमान हैं। विट्ठलनाथ के गुणों का वर्णन कौन कर सकता है?

नेति-नेति कह वेद पुकारे।
सो अधरन पर मुरली धारे।।
शिव सनकादिक अंत न पावै।
सो सखियन संग रास रचावै।।
सकल लोक में आप पुजावै।
सो मोहन ब्रजराज कहावै।।
महिमा अगम-निगम जिहि गावैं।
सो यशोदा लिए गोद खिलावैं।।
जप तप संयम ध्यान न आवैं।
सो नन्द के आंगन धावैं।।

शिव सनकादिक अंत न पावै।
सो गोपन की गाय चरावैं।।
अगम अगोचर लीलाधारी।
सो राधावश कुंज बिहारी।।
जो रस ब्रह्मादिक नहिं पावौ।
सो रस गोकुल गलिन बहायौ।।
सूर सुयश कहिकहा बखानै।
गोविन्द की गति गोविन्द जानै।।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

द्वादश स्कन्ध

इस स्कन्ध में आश्रम लीला का वर्णन है। भागवत का प्रातपाद्यतत्व आश्रय ही है। राजा परीक्षित ने पूछा- अब इस पृथ्वी पर किसका राज्य होगा? शुकदेव ने कहा- जरासंध के पिता बृहद्रथ के वंश का अंतिम राजा होगा परंजय और उसके मंत्री का नाम होगा शुनक। वह अपने स्वामी को मारकर अपने पुत्र प्रद्योत को राजसिंहासन पर बिठलायेगा। बाद में इस भरत खण्ड में नन्द, चन्द्रगुप्त, अशोक आदि राजा होंगे। उसके बाद आठ यवन तथा दस गोरे राजा राज्य करेंगे।

कलियुग के छलिया राजनीतिज्ञ भारत के टुकड़े-टुकड़े करके देश को छिन्न-भिन्न कर देंगे। कलियुग के दुष्ट शासक गायों की हत्या करेंगे, प्रजा का धन हड़पकर स्वयं विलास-वैभव में लीन रहेंगे। कलियुग के ब्राह्मण वेद तथा संध्या से विहीन हो जायेंगे। अपने कुटुम्ब मात्र का पालन-पोषण करना ही चतुराई मानी जायेगी और धर्म का सेवन, मात्र कीर्ति के हेतु ही किया जायेगा।

'दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थो धर्मसेवनम्।'

भागवत में बताये गये लक्षण आज कलियुग में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं। हे राजन! कलियुग के अंत में धर्म की रक्षा हेतु भगवान कल्कि अवतार धारण करेंगे। पृथ्वी में आज तक न जाने कितने सम्राट आये और चले भी गये। कलियुग के पुरुष नारी के अधीन रहेंगे।

'स्त्रैणा: कलौ नरा:।'

मनुष्य को चाहिए कि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी का द्रोह न करे। इस स्कन्ध में कलियुग के लक्षण, दोष तथा उनसे बचने के उपाय बताये गये हैं। सबसे श्रेष्ठ उपाय है, भगवान के नाम का संकीर्तन।

कलियुग के कई दोष होने पर भी एक लाभ है। कलियुग में जो भी कृष्ण कीर्तन करेगा उसके घर कलि कभी नहीं जायेगा। कलि से बचने का एकमात्र उपाय है कृष्ण कीर्तन।

शुकदेव जी कहते हैं- हे राजन, कलियुग के अपलक्षण अनेक हैं किंतु श्रीकृष्ण का कीर्तन करने से सभी दोषों से, पापों से छूटकर प्रभु को पाया जा सकता है।

कलेर्दोषनिधे: राजभस्ति ह्यको महान गुण:।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंग: परं ब्रजेत।।
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मरवै।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद् हरिकीर्तनात्।।
(भा. १२/३/५२)

सतयुग में विष्णु के ध्यान से, त्रैतायुग में यज्ञों से, द्वापर में विधिपूर्वक विष्णु पूजा से जो फल मिलता था वही फल कलियुग में भगवान के नाम कीर्तन से मिलता है। मृत्यु के समय परमेश्वर का ध्यान करने से वे जीव अपने स्वरूप में समाहित कर देते हैं। हे राजन! तुम आसन्न मृत्यु हो, अत: अपने हृदय में भगवान केशव की स्थापना करो। वे तुम्हें परमगति देंगे।

हे राजन! जन्म, जरा और मृत्यु शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा तो अजर और अमर है। सो मैं मर जाऊंगा, ऐसी पशु-बुद्धि का त्याग करो। घट फूट जाने पर उसमें समाया हुआ अकाश, महाकाश से जा मिलता है। इसी प्रकार देहोत्सर्ग होने पर जीव ब्रह्ममय हो जाता है।

राजन! आज तक्षक तुम्हें डसेगा। वह तुम्हारे शरीर को मार सकेगा, आत्मा को नहीं। तुम्हारी आत्मा तो परमात्मा से जा मिलेगी। तुम शरीर से भिन्न हो। आत्मा, परमात्मा का अंश है।

शेष अगले अंक में...

स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम फल : पपीता

पपीता तीनों दोषों को समान तथा पाचन तंत्र को सक्रिय बनाए रखता है। उनकी क्रियाओं की स्वाभाविकता को बनाए रखता है। जठराग्नि ठीक रखता है, गरिष्ठ पदार्थों के सेवन करने पर उनको पचाने की शक्ति पैदा करके मंदाग्नि से बचाए रखता है। शरीर की सप्त धातुओं की रक्षा करता हुआ रस और रक्त को पुष्ट करने में अपना योगदान देता है, जिससे शरीर स्वस्थ बना रहता है।

पपीता के गुण : पपीता अरूचि दूर करने वाला, भूख बढ़ाने में सहायक और मूत्रल है।

यह कब्ज दूर करता है तथा वात एवं कफ प्रधान व्यक्तियों के लिए लाभकारी होता है।

गरिष्ठ पदार्थों को पचाने में सहायक होता है।

पपीते का फल पाचन संस्थान के लिए बड़ा ही उपयोगी है।

यह जिगर व गुर्दे की कार्यशीलता को बढ़ाता है तथा मूत्रवाहक संस्थान का शुद्धिकरण करने में सहायक है।

बवासीर रोग में : बवासीर दो प्रकार का होता है। एक बादी बवासीर तथा दूसरी खूनी बवासीर। दोनों प्रकार के अर्श में पपीता फायदा करता है। अर्श जो बाह्य भागों में होता है, पपीते की जड़ को घिसकर लगाने से राहत मिलती है। बवासीर के रोगी को पपीता अपने भोजन में अवश्य ही शामिल करना चाहिए।

विषैले कीड़ों के दंश में : पपीते के बीजों का उपयोग कम्बोडिया में कीड़ों के काटने पर या दंश स्थानों की पीड़ा व विष के शमन के लिए किया जाता है।

मूत्राशय के शुद्धिकरण में : पपीता खाने में मूत्र साफ एवं शुद्ध होता है। पपीता मूत्रल है अत: यह वृक्कों का शुद्धिकरण तो करता ही है, अन्य दोषों के द्वारा अगर मूत्र कम मात्रा में आता हो तो यह मूत्र को उतारने में सहायक होता है।

वात रोगों में : पपीते के सेवन से वात का शमन होता है तथा अपान-वायु शरीर से बाहर निकल जाती है।

जिगर एवं तिल्ली बढ़ने पर : जिगर एवं तिल्ली बढ़ जाने की अवस्था में कच्चे पपीते को सुखाकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण का सुबह-शाम ५-५ ग्राम की मात्रा में सेवन करना लाभप्रद है। जिससे जिगर एवं तिल्ली की बढ़ी हुई अवस्था धीरे-धीरे अपनी प्राकृतिक अवस्था में आ जाती है।

गले के रोगों में : गले की बढ़ी हुई ग्रंथियों में शोथ तथा बढ़ी हुई ग्रंथियों को पपीता ठीक करने में सहायक सिद्ध हुआ है। इस अवस्था में इसको पेपेन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

मुंह के रोगों में : मुंह के रोग में पपीता अति गुणकारी है। मुंह के छाले, व्रण, जिह्वा में दरारें पड़ जाने पर पपीते के अर्क में ग्लिसरीन मिलाकर उपयोग में लेने से फायदा होता है।

ज्वर नाशक : पपीते के पत्ते ज्वर का शमन करने में उपयोगी पाए गए हैं। ज्वर के समय हृदय की गति भी बढ़ जाती है, जिससे रोगी बेचैनी महसूस करने लगता है। पपीते के पत्तों का क्वाथ लेने पर ज्वर का शमन होता है। रोगी की नाड़ी तथा हृदय की गति सामान्य हो जाती है।

प्रदर रोग में : पपीते का सेवन दोनों प्रकार के प्रदरों को दूर करता है। इसके पत्तों के क्वाथ से योनिद्वार को पिचकारी के माध्यम से साफ करने से योनि में होने वाले व्रण तथा प्रदर रोगों में फायदा होता है।

नासूर (अल्सर) में : श्रीलंका के डॉक्टर एस. जे. विमलावंस के अनुसार कच्चे पपीते से बनी मरहम गहरे घावों को ठीक करने में कारगर साबित होती है। नासूर का इलाज करने में वह उत्तम प्रति जैविक (एंटीबायोटिक) के रूप में काम में ली जा सकती है। घाव वाले स्थान को अच्छी तरह साफ करके हरे पपीते से बनी मरहम का लेप करने से घाव जल्द भर जाते हैं।

आश्रम समाचार

गीता आश्रम मुख्यालय, दिल्ली कैंट

परम पूज्य सद्गुरुदेव भगवान की महती कृपा से आश्रम का कार्य सुचारु रूप से प्रगति पथ पर चल रहा है। प्रातः ५ बजे शंखनाद से प्रारम्भ होकर श्री राधाकृष्ण की मंगला आरती एवं सभी मंदिरों में आरती की जाती है। तदुपरान्त ५.३० बजे श्रीमद्भगवद्गीता के तीन अध्याय का पाठ एवं हनुमान चालीसा का पाठ भी किया जाता है। इसके बाद प्रातः ६.३० बजे श्रीमद्भगवद्गीता के एक अध्याय एवं अन्य मंत्रों के द्वारा हवन किया जाता है। उसके बाद सद्गुरुदेव भगवान की आरती की जाती है। संध्या वेला में ६.३० बजे संध्या आरती, सम्पुट वल्ली पाठ, हनुमान चालीसा पाठ, श्लोक का भावार्थ, भजन-कीर्तन एवं शयन आरती के बाद प्रसाद वितरण के साथ रात्रि ८ बजे सम्पन्न होता है।

गीता आश्रम दिल्ली में प्रत्येक रविवार को दोपहर में ११ बजे से १२ बजे तक सत्संग किया जाता है। जिसमें बारहवें अध्याय का पाठ, गीता आरती, हनुमान चालीसा पाठ एवं भजन कीर्तन आश्रम की माताओं एवं बहनों द्वारा किया जाता है। तत्पश्चात प. पू. स्वामी ब्रह्मानन्द जी द्वारा गीता के ऊपर व्याख्यान किया जाता है। ठीक १२ बजे भगवान राधाकृष्ण एवं श्री सद्गुरुदेव भगवान की आरती की जाती है। उसके पश्चात प्रसाद वितरण किया जाता है।

प्रत्येक शनिवार को आश्रम की माताओं एवं बहनों द्वारा सुंदरकांड का पाठ एवं भजन-कीर्तन किया जाता है एवं प्रत्येक गुरुवार को मीरा सत्संग का भी आयोजन किया जाता है। दिनांक ४ मई, रविवार को गुड़गांव में सत्संग बहन नीरू, भाई प्रदीप मनन जी के निवास स्थान सेक्टर-९ में किया गया। जिसमें गीता आश्रम दिल्ली से पं. उपेन्द्र चौबे, भाई प्रमोद जी उपस्थित थे। भजन-कीर्तन के उपरांत पं. उपेन्द्र द्वारा भगवान की आरती की गई। तत्पश्चात प्रसाद वितरण किया गया। दिनांक २५ अप्रैल को गुरु मां जी ने यूएसए के लिए प्रस्थान किया। गीता आश्रम मंदिर (दिल्ली) का निर्माण कार्य प्रगति पर चल रहा है। समस्त कार्य पर सद्गुरुदेव भगवान की कृपा है।

गीताधाम समाचार

नित्य कार्यक्रम- परम् पूज्य गुरुदेव की कृपा एवं आशीर्वाद से गीताधाम के सभी नित्य कार्यक्रम सुचारु रूप से चल रहे हैं। प्रातः ५.३० बजे शंखनाद से प्रारम्भ होकर भगवान श्रीराधाकृष्ण की मंगला आरती एवं सभी मन्दिरों में आरती पूजन, गीताजी के द्वादश अध्याय, तीन अन्य अध्याय पाठ, गीता आरती, हनुमान चालीसा एवं माखनमिश्री प्रसाद वितरण होता है।

सुबह ६ बजे गुरुकुल विद्या मन्दिर (छात्रावास) के बच्चों द्वारा नित्य द्वादश अध्याय के मंत्रों द्वारा गीता यज्ञ किया जाता है। प्रत्येक सोमवार को श्री हरिहरेश्वर महादेव मन्दिर में पूर्ण विधि विधान सहित रूद्राभिषेक पं. जगदीश वाजपेयी के आचार्यत्व में भक्तों द्वारा नियमित किया जाता है।

संध्या वेला ७.०० बजे से संध्या आरती, सम्पुटवल्ली पाठ, हनुमान चालीसा पाठ, श्लोक का भावार्थ, भजन कीर्तन एवं शयन आरती एवं प्रसाद वितरण के साथ रात्रि ८.३० बजे सम्पन्न होता है।

श्री संकट हरण हनुमान जी को १००८

लड्डुओं का भोग- हर पूर्णिमा की भांति दिनांक १४ मई २०१४ को बुद्ध पूर्णिमा को गीताधाम स्थित संकट हरण हनुमान जी को १००८ लड्डुओं का भोग हनुमान चालीसा की पांच आवृत्तियों के साथ लगाया गया। मुख्य यजमान के रूप में श्री शान्ति स्वरूप जी कल्ला व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शकुन्तला जी रहे। धाम में आवासीय सभी भक्तों ने गुरुकुल के अध्यापकों ने एवं जोधपुर से आये भक्तों ने भाग लिया। आचार्यत्व पुजारी श्री जगदीश वाजपेयी ने किया। आरती के बाद सभी भक्तों ने प्रसादी ग्रहण की।

गुरुकुल शिक्षा सत्र समाप्त- शिक्षा सत्र २०१३-२०१४ दिनांक १६ मई २०१४ को समाप्त हो गया और ग्रीष्मकालीन अवकाश प्रारम्भ हो गया है। सभी छात्र एवं शिक्षकगण अवकाश मनाने हेतु अपने अपने घर चले गये हैं।

गुरुकुल के बोर्ड परीक्षा परिणाम- समाचार लिखने तक बारहवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा के विज्ञान एवं कला वर्ग का परिणाम बोर्ड द्वारा घोषित हो चुका है जो निम्न प्रकार से है-

	१२वीं विज्ञान वर्ग	**१२वीं कला वर्ग**
कुल परीक्षार्थी	१०	४७
उत्तीर्ण		
प्रथम श्रेणी से	५	७
द्वितीय श्रेणी से	३	३१
तृतीय श्रेणी से	०	७
अनुत्तीर्ण	२	२
% परीक्षा परिणाम	८०%	९६%

शिव अभिषेक- गीताधाम में स्थित हरिहरेश्वर महादेव मन्दिर में प्रत्येक सोमवार को शिव जी का अभिषेक किया जाता है। जिसका लाभ धाम के एवं बाहर के भक्त लेते रहते हैं।

गुरुकुल के लिये अध्यापकों का साक्षात्कार एवं गुरुभक्तों का आगमन- दिनांक १७ मई को गुरुकुल शिक्षा समिति के अध्यक्ष श्री अनिल जी अम्बो, मुम्बई पधारे। साथ ही गीताधाम की गतिविधियों एवं गुरुकुल के मॉडर्न शिक्षा के लिये नई तकनीकी ज्ञान के बारे में विस्तृत चर्चा की जिसमें श्री प्रकाश जी पुरोहित, श्रीमती विजयशीला सिंह, श्री अनिल जी अम्बो एवं शिक्षक सदस्य थे।

श्री अम्बो जी जोकि गुरुकुल के शिक्षकों के चयन के लिये रखे गये दिनांक १८ मई २०१४ को गीताधाम में अभ्यर्थियों के साक्षात्कार के लिये पधारे थे। गुरुकुल के लिये शिक्षक सदस्यों के साक्षात्कार हेतु एक चयन समिति बनी थी जिसमें श्री प्रकाश जी पुरोहित, श्री अनिल जी अम्बो, श्री बद्री विशाल जी हर्ष, श्री कल्ला जी, श्रीमती विजयशील सिंह, श्री केशवराज जी जोशी ने उपस्थित अभ्यर्थी का साक्षात्कार लिया जिसमें से विज्ञान, संस्कृत एवं प्राथमिक शिक्षकों का चयन किया गया।

धाम की कृषि भूमि से प्राप्त उपज- धाम में जो कृषि भूमि में मेहनत करके गेहूं की फसल प्राप्त की जिसमें धाम की भोजनशाला के लिये ३९०० किग्रा के गेहूं एवं गौशाला में गायों के लिये खांखला में १२३०० किग्रा की उपज प्राप्त की। इस प्रकार से और अधिक फसल व कृषि विकास के लिये नये प्रयास किये जा रहे है।

धाम की विकासशील बाल गोपाल योजना कार्यक्रम सुचारू संचालन- धाम की ओर से संचालित बाल गोपाल के लिये फैरेक्स वितरण योजना से ग्रामीण बच्चों को बहुत ही अच्छा लाभ मिल रहा है। जिसमें लगातार हर माह वितरण का कार्य किया जाता है।

गीता आश्रम फरीदाबाद

परम पूज्य गुरुदेव महाराज की असीम कृपा से यहां का सम्पूर्ण कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। आरती, पूजा, यज्ञ-सत्संग आदि नियमानुसार चल रहे हैं। भोजनालय का निर्माण कार्य प्रगति पर है।

अमृतसर में गीता-सप्ताह बहुत ही सुंदर ढंग से सम्पन्न हुआ। वहां की कार्यकारिणी सभा गीता-प्रचार के साथ-साथ कई प्रकार के सामाजिक कार्य भी कर रही है। अच्छे सुशिक्षित लोग इस समिति से जुड़ गये हैं और अपना तन-मन-धन से सहयोग भी दे रहे हैं।

दिनांक १.५.२०१४ को पूज्य स्वामी मुक्तानन्द जी व स्वामी गीता मातेश्वरी जी ने चंडीगढ़ के लिए प्रस्थान किया। खरड़, डाकोली, चंडीगढ़ व पंचकुला में गीता-प्रचार करते हुए वे फरीदाबाद दिनांक ९.५.२०१४ को पधार गये।

दिनांक १९.५.२०१४ को पू. स्वामी मुक्तानन्द व मातेश्वरी जी ने हाँगकाँग के लिये प्रस्थान किया। वहां एक मंदिर में गीता-सप्ताह का कार्यक्रम दिनांक २१.५.२०१४ से २८.५.२०१४ तक है। दिनांक ३१.५.२०१४ को वे वापिस पधारेंगे।

जून में उनका प्रोग्राम चम्बा, डलहौजी व हरिद्वार में रहेगा। गुरुदेव भगवान की कृपा से ही गीता-प्रचार एवं प्रसार का कार्य चल रहा है और इसी प्रकार चलता रहेगा।

गीता आश्रम सिंघोड़ों की बारी, किला रोड, जोधपुर (राज.)

गुरुदेव भगवान की असीम कृपा से गीता आश्रम सिंघोड़ों की बारी, किला रोड, जोधपुर में साप्ताहिक गीता गोष्ठी, दैनिक सत्संग, मासिक सत्संग सुचारु रूप से हो रहा है। जिसमें १२वें एवं १५वें अध्याय का पाठ, हनुमान चालीसा पाठ, कृष्ण चालीसा पाठ व भजनों का गायन होता है। गीता सत्संग भिन्न-भिन्न निवास स्थानों पर किया जाता है, जिसका संचालन श्री विजयकान्त जी करते हैं। जिसमें मुख्य रूप से श्री प्रमोद पुरोहित, इन्द्र कुमार, उषासूदन व्यास, अवतार किशन बोहरा, अशोक (नू) भासा, श्याम जी, व नन्दू भासा, रामदेव भजन गायन करते हैं।

गीता आश्रम में हनुमान जयंती बड़े ही हर्षोल्लास से मनाई गई। सभी भक्तगण तिलक लगाकर एक पंक्ति में बैठे व सामूहिक १०८ हनुमान चालीसा का पाठ एक स्वर में ढोलक के साथ किया। सभी ने आरती की तथा सभी को लड्डू प्रसाद वितरित किया गया। सारा वायुमण्डल जय हनुमान से गूंज उठा।

केरल से आये श्री राजेन्द्र पुरोहित तथा जोधपुर से राजेश जी पुरोहित का विजय कान्त जी ने स्वागत किया। तिलक लगाकर गुरुदेव का स्मृति चिन्ह भेंट किया व दुपट्टा ओढ़ाया। राजेन्द्र जी ने दण्डवत् प्रणाम कर भेंट दी। आश्रम के विकास हेतु जो राशि सेवा में दी जिसके लिए आश्रम के सभी सदस्य साधुवाद देते हैं।

श्री मोहनलाल जी ने श्री टीपू सा की स्मृति में गीता आश्रम को विद्युत संचालित नगाड़ा आरती हेतु भेंट किया। वे भी साधुवाद के पात्र हैं।

पुष्य नक्षत्र को शिवलिंग पर दुग्ध व जलाभिषेक युवा मण्डल प्रफुल्लित हो उठा। अंकित छंगाणी, मनीष पणिया, केशव थानवी, राहुल जोशी, अभिषेक किया करते हैं और गुरुवार को गुरुदेव की मूर्ति पर भी दुग्धाभिषेक किया करते हैं।

आश्रम का निरन्तर विकास हो रहा है। यह सब गुरुदेव की स्वयं की देखरेख में हो रहा है।

राशिफल : 15 जून से 16 जुलाई 2014 तक

मेष चू, चे, चो, ल, ली, लू, ले, लो, अ
अधिक दौड़-धूप के कारण स्वास्थ्य बिगड़ सकता है। जीवन साथी की सेहत का ख्याल रखें, भाई-बन्धुओं से सहायता मिलेगी। शुभ यात्रा, कार्य व्यवसाय मध्यम रहेगा।

वृष ई, ऊ, ए, ओ, बा, बी, बु, बे, बो
स्वास्थ्य का ख्याल रखें, आर्थिक रूप से समय मध्यम रहेगा, परिवार में वृद्धि हो सकती है। रूका हुआ धन मिल सकता है, सन्तान के विषय में चिंता रह सकती है।

मिथुन क, की, कु, घ, ड़, छ, के, को, ह
जीवनसाथी का स्वास्थ्य चिंताकारक हो सकता है, संतान से अप्रसन्नता मिल सकती है, मनोबल बना रहेगा, कार्य व्यवसाय अच्छा रहेगा, भूमि, जमीन-जायदाद से फायदा मिलेगा।

कर्क ही, हू, हे, हो, डा, डी, डू, डे, डो
स्वास्थ्य का ख्याल रखें, अत्यधिक धन व्यय से मन संतप्त रहेगा, माता-पिता का स्वास्थ्य चिंताकारक हो सकता है, जमीन-जायदाद व वाहन आदि का सुख हो सकता है।

सिंह मा, मी, मू, मे, मो, ट, टी, टू, टे
परीक्षा प्रतियोगिता में सफलता मिलेगी, संतान से खुशी मिलेगी, रोग तथा लड़ाई-झगड़े के काम में विजय मिलेगी, कार्य व व्यवसाय में उन्नती होगी, समय अनुकूल है।

कन्या टो, प, पी, पू, ष, ण, ठ, पे, पो
समय तनावपूर्ण रहेगा, जमीन-जायदाद व वाहन आदि की उपलब्धि हो सकती है, आय-व्यय बराबर रहेगा, पराक्रम में वृद्धि होगी, संतान के कारण चिंता रह सकती है।

तुला रा, री, रु, रे, रो, ह, त, ती, तू, ते
जीवन साथी से अनबन रह सकती है, शारीरिक रूप से कमजोर रह सकते हैं, अचानक धन का नुकसान, वाद-विवाद का भय, सहयोगियों से सहायता, पराक्रम में वृद्धि होगी जिससे हर बाधा को पार करोगे।

वृश्चिक तो, ना, नी, नू, ने, या, यी, यू
स्वास्थ्य मध्यम रहेगा, जीवन साथी का स्वास्थ्य चिंताकारक रह सकता है, माता-पिता का स्वास्थ्य चिंताकारक हो सकता है, परिवार में वृद्धि हो सकती है, आर्थिक रूप से समय उत्तम रहेगा,

धनु ये, यो, भा, भी, भू, धा, फा, ढ, भे
विदेश संबंधित कार्यों से लाभ, कार्य-व्यवसाय उत्तम रहेगा, भोग-विलास के साधनों में वृद्धि होगी, संतान के विषय में चिंता रह सकती है, आर्थिक रूप से समय बलवान रहेगा।

मकर भो, ज, जी, जे, खी, खू, ग, गी
मान-सम्मान में वृद्धि होगी, धन का व्यय अधिक रहेगा, मकान, वाहन का सुख होगा, भोग-विलास के कार्यों में धन का व्यय रहेगा, सन्तान उन्नति करेगी।

कुम्भ गु, गे, गो, सा, सी, सू, से, सो, दा
परीक्षा प्रतियोगिता में सफलता मिलेगी, संतान से खुशी मिलेगी, आर्थिक स्थिति उत्तम रहेगी, विपरीत लिंग से प्रेम हो सकता है, समय हर लिहाज से उत्तम है।

मीन दी, दू, थ, झ, दे, दो, चा, ची
मान-सम्मान में वृद्धि होगी, आय से व्यय अधिक हो सकता है, परीक्षा-प्रतियोगिता में सफलता मिलेगी, संतान से सुख मिलेगा, जीवन-साथी का स्वास्थ्य चिंताकारक हो सकता है।

ज्योतिर्विद- सत्यपाल शर्मा

एम.एस.सी. (फिजिक्स) ज्योतिर्विज्ञान केन्द्र

Mobile : 09560089575 ● e-mail : daivagya@hotmail.com

व्रत/त्योहार सूची

15 जून 2014 से 16 जुलाई 2014

उत्तर गोल/उत्तराणायन/गीष्म ऋतु

क्र.स.	व्रत/पर्व	दिनांक	वार
१.	श्री गणेश चतुर्थी व्रत	१६-०६-२०१४	सोमवार
२.	सायन दक्षिणायन प्रारम्भ	२१-०६-२०१४	शनिवार
३.	योगिनी एकादाशी व्रत	२३-०६-२०१४	सोमवार
४.	मास शिवरात्रि व्रत	२५-०६-२०१४	बुधवार
५.	आषाढ़ कृष्ण अमावस्या	२७-०६-२०१४	शुक्रवार
६.	श्री जगन्नाथ यात्रा	२९-०६-२०१४	रविवार
७.	श्री विनायक चतुर्थी व्रत	१-०७-२०१४	मंगलवार
८.	कुमार षष्ठी	३-०७-२०१४	गुरुवार
९.	विवस्वत सप्तमी	४-०७-२०१४	शुक्रवार
१०.	हरीशयनी एकादशी व्रत	९-०७-२०१४	बुधवार
११.	चातुरर्मास्य व्रत नियम प्रारम्भ	९-०७-२०१४	बुधवार
१२.	श्री विष्णु शयनोत्सव	९-०७-२०१४	बुधवार
१३.	आषाढ़ शुक्ल प्रदोष व्रत	१०-०७-२०१४	गुरुवार
१४.	कोकिला व्रत, शिवशयनोत्सव,	११-०७-२०१४	शुक्रवार
१५.	श्री सत्यनारायण व्रत	११-०७-२०१४	शुक्रवार
१६.	गुरु पूर्णिमा, व्यास पूजा	१२-०७-२०१४	शनिवार
१७.	अंगारकी गणेश चतुर्थी व्रत	१५-०७-२०१४	मंगलवार

पंचक प्रारम्भ : मंगलवार १७-०६-२०१४, मंगलवार १४-०७-२०१४

पंचक समाप्त : शनिवार २१-०६-२०१४, शनिवार १९-०७-२०१४

निदेशक :

पं. गौरीदत्त शर्मा ज्योतिर्विद (गीता रत्न)

(श्रीमद्भागवत आदि पौराणिक कथावाचक)

ज्योतिष विज्ञान केन्द्र, गीता आश्रम, सदर बाजार, दिल्ली कैन्ट, दिल्ली-110010

फोन नं. 011-25683558, मोबाइल 09418551441

e-mail : daivagya@gmail.com

मेकिन उरानन स्कालरशिप फंड

गीता आश्रम, थाईलैंड, बैंकाक

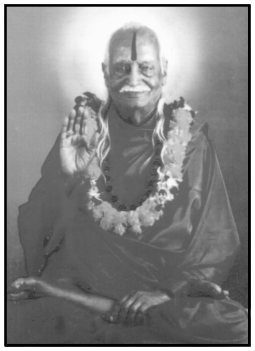

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं, बल्कि वह तो अवश्य कर्तव्य हैं; क्योंकि यज्ञ, दान और तप, ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान् पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

(गीता-18/5)

'मेकिन उरानन स्कालरशिप फंड' की स्थापना परम पूज्य परमहंस स्वामी श्री हरिहर जी महाराज द्वारा 1989 में बैंकाक में निर्धन किंतु प्रतिभाशाली छात्रों को नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा में सहायता प्रदान करने हेतु की गई थी। श्रीमती मेकिन उरानन, उनका परिवार, महाराज जी तथा सहेली फाउंडेशन, श्री जयकुमार मीरपुरी, श्री हासाराम एस. तनवानी, कृष्णा एशियन आर्ट्स कं. और अन्य अनेक लोग इस फंड की पूंजी को बढ़ाने के लिए तत्पर रहे हैं।

फंड की व्यवस्था की देखभाल गीता आश्रम थाईलैंड की 'मेकिन उरानन छात्रवृत्ति कमेटी' करती है। उस कमेटी के सदस्य हैं-

Dr. Chirapat Prapanvidya (Silpakorn University), Dr. Samniang Leurmsai (Silpakorn University), Dr. Prapod Assavarirulhakarn (Chulalongkorn University), Miss Vilai Ueranant, Dr. M.C. Agarwal (Former Senior Officer of the United Nations), Mr. Somsakdi Tantiwathin (Former President of Rotary Club of Bangkapi and Former President of India-Thai Chamber of Commerce) and Mr. C. Hotwani (Treasurer, Geeta Ashram, Thailand).

निर्धन और प्रतिभाशाली छात्रों की शिक्षा-प्राप्ति में सहायता करना एक सर्वोत्तम पुण्य कार्य है। शायद इस सहायता के बिना उनके लिए शिक्षा-प्राप्ति अत्यन्त कठिन होती। योग्य छात्र अधिकाधिक संख्या में आर्थिक सहायत प्राप्त कर सकें इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए 'मेकिन उरानन स्कालरशिप फंड' दानी महानुभावों से अधिकाधिक दान देने का अनुरोध करता है।